कृषि उद्यान दर्पण

Volume 1 : Issue 2 : August 2021

कृषि उद्यान दर्पण

3/2, ड्रमण्ड रोड, (नथानी अस्पताल के सामने), प्रयागराज-211001, (U.P.) दूरभाष-9452254524
वेबसाइट : saahasindia.org, ई-मेल-contact.saahas@gmail.com
Articale Submission :– krishiudyandarpan.hi@gmail.com

सम्पादकीय मण्डल

प्रधान संपादक
डॉ. विवेक कुमार त्रिपाठी
प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, उद्यान विज्ञान विभाग एवं फल विज्ञान विभाग
चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उ.प्र.)

वरिष्ठ संपादक
डॉ. रोशन लाल राऊत
वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं विभागाध्यक्ष, कृषि विज्ञान केन्द्र, बालाघाट (एम.पी.)
डॉ. शुभम कुमार कुलश्रेष्ठ
सहायक अध्यापक, उद्यान विज्ञान विभाग
रविन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, रायसेन (एम.पी.)

सह सम्पादक गण
डॉ. नीलम राव रंगारे
वैज्ञानिक, संस्था निदेशालय
इन्दिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, लाभण्डी, रायपुर (छत्तीसगढ़)
डॉ. नंगखाम जेम्स सिंह
पशुचिकित्सक क्षेत्र सहायक,पशुपालन एवं डेयरी विभाग, शुआट्स, (उ.प्र.)
डॉ. अर्घ्य मानी
सहायक अध्यापक, लवली प्रोफेशनल विश्वविद्यालय (एलपीयू), फगवारा, (पंजाब)
प्रखर खरे
एम.एस.सी. उद्यान विज्ञान विभाग, शुआट्स, प्रयागराज (उ.प्र.)

पांडुलिपि संपादक
स्निग्धा हल्दर

कंटैट लेखक/ स्तंभ लेखक
डॉ. विशाल नाथ पाण्डेय
विशेष कार्य अधिकारी
आई.सी.ए.आर., आई.ए.आर.आई, झारखण्ड, हजारीबाग (झारखण्ड)

फोटोग्राफी
स्वप्निल सुभाष स्वामी

वेब एडिटर
प्रितेश हलदार
प्रकाशक, एग्रो इण्डिया पब्लिकेशन, प्रयागराज, (उ.प्र.)

प्रकाशक
Society for Advancement in Agriculture, Horticulture & Allied Sectors (SAAHAS)

कृषि उद्यान दर्पण

इस पृष्ठ में

- **पपीते का प्रसंस्करण एवं औषधीय गुण** 3
  गजेंद्र कुमार राणा, निखिल कुमार सिह, खनेन्द्र कुमार देशमुख, सुधाकर प्रसाद मिश्रा एवं दिनेश कुमार पंचेश्वर
- **दुग्ध के बढ़ते उत्पादन व उत्तम डेरी प्रबंधन द्वारा डेरी क्षेत्र में आत्मनिर्भर भारत** 7
  चित्रनायक, प्रशांत मिंज, अमिता वैराट, खुशबू कुमारी, प्रियंका एवं हिमा जॉन
- **सूक्ष्म जीवों से मृदा एवं पर्यावरण सुधार** 11
  खलील खान एवं मनोज मिश्रा
- **ट्रेलिस एवं मचान विधि द्वारा करेले की जैविक खेती** 15
  अमृता जाधव, विजय बहादुर एवं फूलचन्द चौरसिया
- **जड़ वाले सब्जियों के शरीर क्रियात्मक विकार** 18
  फूलसिंह मरकाम एवं प्रमोद कुमार नेताम
- **नये फलोद्यान हेतु वैज्ञानिक ढंग से रेखांकन, नियोजन एवं प्रबंधन** 21
  विवेक कुमार त्रिपाठी
- **आलू की पछेता झुलसा बीमारी एवं उसका एकीकृत रोग प्रबंधन** 25
  नरेन्द्र कुमार, गोविन्द विश्वकर्मा एवं सोनू कुमार
- **सम्भावनाओं से भरा एक उभरता फल- लांगन** 30
  विशाल नाथ, इवनिंग स्टोन मार्बोह एवं स्वप्निल पाण्डेय
- **लीची फल में कटाई के दौरान भौतिक एवं रासायनिक परिवर्तन** 35
  बलवीर सिंह, शुभम कुमार कुलश्रेष्ठ, कुमारी सारिका एवं अमित कुमार सिंह
- **चुकन्दर का पौष्टिक एवं चिकित्सकीय महत्व** 40
  धर्मदेव चैहान, अमित कुमार मौर्य एवं पवन कुमार गौतम
- **सघन बागवानी की तकनीक** 43
  सुनील चन्द्रा
- **जैविक खेती में ट्राइकोडर्मा एक उपयोगी कवक** 46
  खलील खान एवं वी. के. कनौजिया
- **भरपूर पोषण के साथ रखे अपनों का ख्याल-गृह वाटिका** 49
  प्रतिभा, राजाराम बुनकर, विनय कुमार कर्दम एवं अलका
- **अश्वगंधा की खेती कर मुनाफा कमाएँ** 52
  प्रखर खरे

इस पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखकों के निजी हैं। प्रकाशित/सम्पादक इसके लिये उत्तरदायी नहीं है। इस पत्रिका से सम्बन्धित वाद का निस्तारण क्षेत्र प्रयागराज होगा।*

पपीते का प्रसंस्करण एवं औषधीय गुण

गजेंद्र कुमार राणा[1*], निखिल कुमार सिह[2], खनेन्द्र कुमार देशमुख[3], सुधाकर प्रसाद मिश्रा[4] एवं दिनेश कुमार पंचेश्वर[5]

[1,2,3,5]जवाहर लाल नेहरु कृषि विश्वविद्यालय, जबलपुर,

[4]महात्मा गाँधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना

Corresponding Author - rana93g@gmail.com

प्रस्तावना

पपीता एक महत्वपूर्ण फल है, जिसमे विटामिन A और B (पीले फलों में) पाए जाते है। इसका उपयोग खाने के साथ त्वचा की देखभाल के लिए भी किया जाता है।

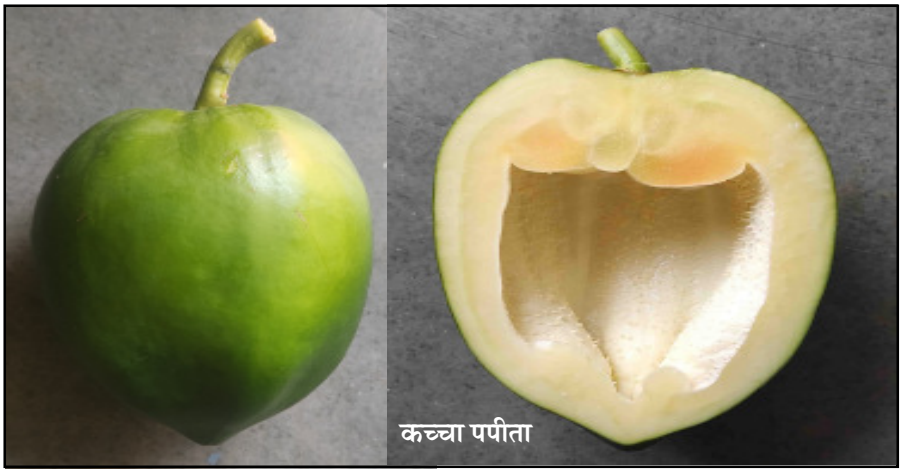

कच्चे पपीते से सब्जी टिक्की एवं अन्य व्यंजन, बनाये जाते है। पका पपीता फल के रूप मे खाया जाता है और साथ ही साथ इसका उपयोग जूस, जेली, जैम बनाने के लिए भी किया जाता है। कई लोग पपीते को फ़ेस पैक के रूप मे भी उपयोग करते है एवं आयुर्वेद से भी इसका महत्व है। यूँ तो हवाइन ओर मैक्सिकन पपीते बहुत प्रसिद्ध है, परन्तु भारत के पपीते भी खाने मे बहुत ही स्वादिष्ट होते है और अलग-अलग किस्मों के पपीते का स्वाद भी अलग अलग होता है।

100 ग्राम पपीते मे 1 से 2 ग्राम प्रोटीन, 98 कैलोरी ऊर्जा, 70 मि. ग्रा आयरन, तथा रेशे भी भरपूर मात्रा मे होते है। पपीता पेट के लिए भी अत्यंत लाभदायक है और यह खाना पचाने मे भी मदद करता है। अगर कच्चे पपीते को काटकर मांसाहारी भोजन में डाला जाए तो वह जल्दी पक जाता है।

पपीता एक बहुत ही गुणकारी फल है परन्तु इसे ताज़ा खाना ही ज्यादा उपयोगी है। यह पेड़ से टूटने के पश्चात् ज्यादा दिनो तक ताज़ा नही रहता, इसलिए इसे जल्दी प्रयोग कर लेना चाहिए। पपीते का फल इसकी पत्तियों के नीचे लगता है। अगर कोई व्यक्ति पपीते का पेड़ लगाता है, तो वह पेड़ जल्दी ही 2 से 3 साल मे फल देने लायक हो जाता हैं।

पपीता में मौजूद पोषक तत्व

पोषक तत्व	मात्रा
पोटेशियम	182 मि. ग्रा.
कार्बोहाइड्रेट	11 ग्रा
शुगर	8 ग्रा
प्रोटीन	0.5 ग्रा.
विटामिन A	19%
विटामिन C	4.9 ग्रा.
रेशा	1.7 ग्रा.

पपीते का प्रसंस्करण

टूटी-फ्रूटी

इंडियन कैन्डीड फ्रूट्स यानी कि टूटी फ्रूटी को केक, कुकीज, बिस्किट्स, कस्टर्ड और आइसक्रीम में डाल कर प्रयोग किया जाता है। आम तौर पर यह बेकरी पर मिल जाती है। यदि न मिले तो इसे आप आसानी से घर में भी बना सकते है। जिसके लिए आवश्यक सामग्री निम्न प्रकार है।

सामग्री

- कच्चा पपीता 400 ग्राम
- चीनी 400 ग्राम
- रंग पीला, हरा और लाल
- एसेन्स वनीला या खसखस

विधि

पपीते को धोइयें, छील कर बीज हटाकर छोटा-छोटा काट लीजिये। पपीते के टुकड़ों को उबलते पानी में डालकर 3 मिनट तक उबलने दीजिए गैस बन्द कर दीजिए। पपीते के टुकड़े ब्लान्च हो गये है। पपीते के टुकड़ों को ब्लान्च होने के बाद पानी से निकाल लीजिये। 500 ग्राम चीनी को पैन में डालिये और आधा कप पानी डाल दीजिये। चीनी घुलने तक चाशनी पका लीजिये। ब्लान्च पपीते के टुकड़े को चाशनी में पकने दीजिये और चाशनी गाढ़ी होने तक पकाइये।

पपीते के टुकड़े चाशनी में पक कर तैयार हो गये है। गैस बन्द कर दीजिये और पपीते के टुकड़े को ठंडा होने दीजिये। चाशनी में पड़े पपीते के टुकड़ों में वनीला एसेन्स की 2-3 बुंद डालकर मिला दीजिये। चाशनी में पके पपीते के टुकड़ों को 3 भागों में बाँट लीजिये। एक प्याले में 2 चुटकी पीला रंग ले लीजिये और एक भाग चाशनी में डूबे पपीते के टुकडे डाल कर मिला दीजिये। दूसरे बर्तन में 2 चुटकी लाल रंग ले लीजिये। दूसरे भाग चाशनी में डूबे पपीते के टुकडे डाल कर मिला दीजिये और अब तीसरे बर्तन में 2 चुटकी हरा रंग ले लीजिये और बाकी बचा हुआ भाग चाशनी में डुबे पपीते के टुकड़े डालकर रख दीजिये। अब ये पपीते के टुकड़े जो चाशनी सहित अलग-अलग रंग में डूबे हुये है। उन्हें बिलकुल इसी तरह 12-14 घंटे के लिये रख दीजिये। 12 से 14 घंटे के बाद पपीते के टुकड़े चाशनी से निकाल कर प्लेट में रखी जाली के ऊपर डालिये इससे अतिरिक्त चाशनी प्लेट में आ जायेगी और पपीते के टुकड़े को सूखने दीजिये। टूटी फ्रूटी को किसी कन्टेनर में भर कर रख लीजिये और जब भी आवश्यकता हो उपयोग कीजिये।

सामान्य तौर पर टूटी-फ्रूटी को तीन रंगों बनाया जाता है लाल, हरा और पीला। आपके पास जो भी खाद्य रंग हो उनसे टुटी फ्रूटी बनाकर तैयार कर सकते है।

टूटी-फ्रूटी

टूटी फ्रूटी केक

टूटी फ्रूटी का यह लजीज केक बहुत ही जायकेदार होता है। इसका सेवन करना सभी को पसंद होता है।

सामग्री

- 1 कप मैदा
- 1 कप दही
- 1/2/कप चीनी पाउडर
- 1/2/कप टूटी फ्रूटी
- 1/2/कप मक्खन
- 1 टी स्पून बेकिंग पाउडर
- 1 टी स्पून बेकिंग सोडा
- 1 टी स्पून वैनिला एसेंस

बनाने की विधि

टूटी फ्रूटी केक को बनाने के लिए सबसे पहले एक कटोरी में चीनी पाउडर और दही को डालकर अच्छे से मिला ले। इस मिश्रण को अच्छे से फेंट ले ताकि आपका केक अच्छा बने।

- अब एक बर्तन में मैदा ले और छलनी की मदद से छान ले। इस मिश्रण में बेकिंग पाउडर और बेकिंग सोडा डालकर अच्छे से मिला ले। इसी मिश्रण में दही वाला मिश्रण डाले और मिलाये।

- इतना करने के बाद इस मिश्रण में वैनिला एसेंस और टूटी फ्रूटी को डालकर मिला दे। मिश्रण को फेंट ले। इसी मिश्रण में थोड़ा सा मक्खन डाले और मिलाये। आपका केक वाला मिश्रण तैयार है।
- केक बनाने वाला बर्तन ले। उसमे मक्खन लगाकर बर्तन को चिकना कर ले। इसमें बना हुआ केक का मिश्रण डाले और चारों तरफ फैला ले। इस बर्तन को माइक्रोवेव में रख दे।

4-5 मिनट के बाद इस बर्तन को माइक्रोवेव से बाहर निकाल ले। कुछ देर ठंडा होने के बाद इसे प्लेट में निकाल ले, कुछ देर बाद आपका लजीज टूटी फ्रूटी केक बनकर तैयार है। इसे सभी को परोसे।

पपीते के औषधीय गुण

- अगर किसी व्यक्ति को पीलिया होता है तो पपीता बहुत ही फायदेमंद होता है।
- कच्चे पपीते मे पैपिन नामक पदार्थ होता है, जो भोजन को पचाने मे सहायक होता है।
- चेहरे को सुंदर बनाने के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है। पके हुए पपीते को चेहरे पर लगाने से चेहरे पर मुंहासे नही होते तथा यह चेहरे की झुर्रियों को भी कम करता है।
- पपीते का उपयोग कई लोग प्राकृतिक ब्लीच के रूप मे भी करते हैं।
- पपीता आँखों के लिए भी हितकारी होता है। इसमे विटामिन A काफी मात्रा में पाया जाता है, जो रातोंधी नामक रोग के रोकथाम में सहायक होता है।
- पपीता दातों के लिए भी फायदेमंद होता है। अगर दातों मे से खून आता है तो पपीता उसमे भी लाभकारी है ।
- पके हुए (पीले रंग के) पपीते का गुदा पेट की परेशानी जैसे कब्ज़ और अपच को दूर करता है।
- पपीते का उपयोग जैम तथा जेली के रूप में भी किया जाता है।
- पपीता साल मे बारह महीने मिलता है। यह फल तथा सब्जी दोनों के रूप मे उपयोगी है।
- पपीता खाने से शरीर में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा कम होती है। उच्च कोलेस्ट्रॉल हार्टअटैक के मुख्य कारणों में से एक है। कोलेस्ट्रॉल को कम करना है, तो पपीता खाना शुरू करें।
- पपीते के सेवन करने से रोग प्रतिरोधक क्षमता मजबूत होती है। जिससे आपके शरीर में बीमारी का जल्दी असर नहीं होता है। इसमें विटामिन 'सी' पाया जाता है, जो शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है।
- पपीते के सेवन करने से हड्डियाँ मजबूत होती है एवं गठिया के रोगी के लिए भी बहुत लाभकारी होता है ।
- पपीते के सेवन करने से महिलाओं व किशोरियों को होने वाली मासिक परेशानी में बहुत आराम मिलता है । इसमें पैपिन नाम का एंजाइम होता है, जो उस समय शरीर में होने वाले दर्द एवं परेशानी को कम करता ह।
- पपीते के सेवन करने से शरीर के हार्मोन बदलते है, जो तनाव एवं गुस्से को कम करने में सहायक होता है ।
- पपीते के नियमित सेवन करने से कैंसर जैसी जानलेवा बीमारी से भी बचा जा सकता है।

टूटी-फ्रूटी बनाने का प्रशिक्षण

टूटी फ्रूटी केक

- पपीता बालों के लिए भी अच्छा होता है। पपीते का पेस्ट बालों में लगाने से बाल लम्बे एवं घने होते है साथ ही साथ रुसी की परेशानी भी दूर होती है।

निष्कर्ष

पका पपीता फल के रूप में खाया जाता है। साथ ही साथ इसका उपयोग जूस, जेली, जैम बनाने के लिए भी किया जाता है। यदि लोग पपीते से टूटी-फूटी जैम, जेली आदि के रूप में मूल्य संवर्धन करते हैं, तो वे पोषण सुरक्षा तथा अतिरिक्त आय सृजन कर आत्मनिर्भर हो सकते हैं।

कुटीर उद्योग ग्रामीण महिलाओ के लिए बहुत ही अच्छी पहल है। जिससे महिलाएं आत्मनिर्भर व सशक्त हो सकती है।

❖❖

दुग्ध के बढ़ते उत्पादन व उत्तम डेरी प्रबंधन द्वारा डेरी क्षेत्र में आत्मनिर्भर भारत

चित्रनायक[1*], प्रशांत मिंज[2], अमिता वैराट[3], खुशबू कुमारी[4], प्रियंका[5] एवं हिमा जॉन[6]

[1,2,3, 4, 5 & 6]डेरी अभियांत्रिकी विभाग, राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, (मानद विश्वविद्यालय)

Corresponding Author - chitranayaksinha@gmail.com

परिचय

भारत एक कृषि प्रधान देश है और देश के कई हिस्सों में बारिश की कमी से कई बार कृषकों की आय मे काफी कमी हो जाती है। इस परिस्थिति में छोटे या मध्यम वर्ग के किसानों की स्थिति काफी दयनीय हो जाती है। सूखे की हालत में छोटे व मध्यम कृषकों के पूरे परिवार व पशुओं जैसे-गाय-बैल, भैंस, बकरियों आदि की स्थिति बहुत ही दयनीय हो जाती है। ऐसी हालत में जिन कृषकों के पास अतिरिक्त आय के स्रोत होते हैं जैसे पशुपालन, डेरी आदि वे इन विषम परिस्थितियों का सामना अच्छी तरह से कर लेते हैं परन्तु सिर्फ कृषि पर आधारित कृषकों की स्थिति दयनीय हो जाती है। अतः आजकल मौसम की अनियमितताओं को देखते हुए लगभग आवश्यक सा हो गया है कि हर कृषक चाहे वह छोटा, मध्यम या बड़ा, सभी कोई न कोई अतिरिक्त आय का स्रोत भी खेती के साथ-साथ अवश्य रखे। डेरी व पशुपालन इस अवस्था में कृषकों के समक्ष अतिरिक्त आय हेतु एक बहुत ही अच्छा विकल्प है। डेरी कृषकों की सार्थक मेहनत व डेरी क्षेत्र में विकास के द्वारा पिछले दशक से भारत पूरी दुनिया में शीर्ष दुग्ध उत्पादक का लगभग18.5 प्रतिशत उत्पादन भारत में होता हे। भारत ने वर्ष 2014 के दौरान पूरे यूरोपीय संघ से अधिक दुग्ध का उत्पादन किया। आजादी के पश्चात् सन् उन्नीस सौ पचास के दौरान भारत में दुग्ध उत्पादन की प्रतिशत विकास दर 1.64प्रतिशत थी, जिसमें डेरी कृषकों की लगन व मेहनत के कारण लगातार सुधार होता गया। व देश दुगध उत्पादन में प्रथम स्थान पर पहुँच गया। तालिका-1 में राष्ट्रीय डेरी विकास बोर्ड द्वारा उपलब्ध जानकारी के अनुसार आजादी के पश्चात पिछले सत्तर वर्षों के दौरान देश में निरंतर दुग्ध का बढ़ता उत्पादन व प्रतिदिन ग्राम प्रति व्यक्ति बढ़ती दुग्ध की उपलब्धता दर्शायी गयी है।

उत्तम तकनीकों का विकास, पशुओं की उचित देख-भाल सही रख-रखाव व डेरी कृषकों की मेहनत के कारण दुग्ध के उत्पादन में तिगुनी से अधिक की वृद्धि संभव हो पाई। भारत में बढ़ती शाकाहारी आबादी के कारण डेरी उद्योग सम्पूर्ण खाद्य उद्योग का एक महत्वपूर्ण अंग बनता जा रहा है साथ ही साथ भारतीय अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के कारण विशिष्ट प्रकार के दुग्ध उत्पादों का आयात होने लगा है, जिसके परिणामस्वरूप हमारे देश के डेरी किसानों ने भी उत्तम गुणवत्ता वाले दुग्ध व दुग्ध उत्पादों के उत्पादन के महत्व को भली-भांति समझा और गत वर्षों के दौरान इस दिशा में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है।

देश में प्रति व्यक्ति दुग्ध की उपलब्धता वर्ष 1991-1992 की अवधि के दौरान 178 ग्राम प्रतिदिन थी, जो वर्ष 2016-17 की अवधि के दौरान 355 ग्राम प्रतिदिन हो गयी एवं प्रति व्यक्ति दुग्ध की उपलब्धता में भी निरंतर विकास होता गया और वर्ष 2018-19 में यह उपलब्धता बढ़कर 394 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रति दिन हो गयी।

आत्मनिर्भर भारत में बढ़ता स्वच्छ दूध उत्पादन

भारत को दुनिया में नंबर एक दूध उत्पादक के रूप में लाने के लिए ग्राम उद्यमिता मुख्य कारक है। देश में डेयरी विकास डेरी बोर्ड की मदद से छोटे डेरी फार्म व विभिन्न सहकारी डेरी फेडरेशन आदि द्वारा विभिन्न प्रकार के अभियान चलाकर व गांवों में अच्छे पशुपालन प्रथाओं द्वारा स्वच्छ दूध का उत्पादन किया जा रहा है। दुग्ध उत्पादन की प्रणाली को साफ करने के लिए पहला कदम स्वच्छता, हाउसकीपिंग की स्वच्छता, दूध देने के तरीकों और अच्छे पशुपालन प्रथाओं पर दूध उत्पादकों की लिए जरूरी शिक्षा और प्रशिक्षण होने चाहिए।

तालिका 1: आजादी के पश्चात देश में निरंतर दुग्ध का बढ़ता उत्पादन व प्रतिदिन ग्राम प्रति व्यक्ति बढ़ती दुग्ध की उपलब्धता

वर्ष	मिलियन टन में दुग्ध उत्पादन	प्रतिदिन ग्राम प्रति व्यक्ति दुग्ध उपलब्धता
1950-51	17.0	130
1955-56	19.0	132
1960-61	20.0	126
1968-69	21.2	112
1973-74	23.2	110
1980-81	31.6	128
1985-86	44.0	160
1991-92	55.6	178
1992-93	58.0	182
1993-94	60.6	186
1994-95	63.8	192
1995-96	66.2	195
1996-97	69.1	200
1997-98	72.1	205
1998-99	75.4	210
1999-2000	78.3	214
2001-02	84.4	222
2002-03	86.2	224
2003-04	88.1	225
2004-05	92.5	233
2005-06	97.1	241
2006-07	102.6	251
2007-08	107.9	260
2008-09	112.2	266
2009-10	116.4	273
2010-11	121.8	281
2011-12	127.9	290
2012-13	132.4	299
2013-14	137.7	307
2014-15	146.3	322
2015-16	155.5	337
2016-17	165.4	355
2017-18	176.3	375
2018-19	187.7	394
2019-20	198.4	407

स्रोत : राष्ट्रीय डेरी विकास बोर्ड

देश में स्वच्छ दूध उत्पादन की तकनीक

डेरी व पशुपालन से जुड़े कृषकों हेतु सरकारी संस्थानों द्वारा समय-समय पर जागरूकता और प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं, जिनसे देश में डेरी का निरंतर विकास होता गया है। किसानों को स्वच्छ दूध उत्पादन के महत्व के बारे में जागरूक करने के लिए भाकृअनुप-राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान द्वारा देश के कई केन्द्रों में नियमित रूप से डेरी व पशुपालन से जुड़े कृषकों के लिए शैक्षिक सहायता, राष्ट्रीय डेरी मेला, विभिन्न प्रशिक्षण प्रोग्राम और कार्यक्रम आयोजित किए किये गए जाते रहे हैं। इस दौरान नई तकनीकों व उपकरणों के बारे में विस्तृत जानकारियाँ गाँव, समाज और दुग्ध संग्रह केंद्रों पर प्रदर्शित चार्ट-पोस्टर के रूप में उपलब्ध कराया गया, जिनके द्वारा उन्हें कृषकों एवं पशु पालकों को दूध को गाय के थन से लेकर रिसेप्शन डॉक तक आने के दौरान हाइजेनिक वातावरण उपलब्ध कराना, उचित रखरखाव, स्वच्छ बर्तन की उपलब्धता, दूध ठंडा करने वाले बल्क टैंक और कूलर की उपलब्धता के बारे में नियमित रूप से जागरूक किया जाता है। उत्तम गुणवत्ता के दुग्ध उत्पादन हेतु पशुओं को दिए जाने वाले चारे का भी स्वच्छ व पौष्टिक होना आवश्यक होता है। उन्हें दिए जाने वाले चारा में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से सूक्ष्मजीव या रासायनिक संदूषक नहीं होना चाहिए, जो उनके उत्तम स्वास्थ्य के लिए अस्वीकार्य है।

तालिका 2 : देश के विभिन्न अग्रणी राज्यों में दुग्ध उत्पादन

राज्य		दुग्ध उत्पादन (मिलियन टन)
1.	उत्तर प्रदेश	30.51
2.	राजस्थान	23.66
3.	मध्य प्रदेश	15.91
4.	आंध्र प्रदेश	15.04
5.	गुजरात	14.93
6.	पंजाब	12.59
7.	महाराष्ट्र	11.65
8.	हरियाणा	10.72
9.	बिहार	9.81
10.	तमिलनाडु	8.36
11.	कर्नाटक	7.90
12.	पश्चिम बंगाल	5.60
13.	तेलंगाना	5.41
14.	केरल	2.548
15.	जम्मू एंड कश्मीर	2.54

स्रोतः राष्ट्रीय डेरी विकास बोर्ड

चारा और साइलेज को विश्वसनीय स्रोत से खरीदा जाना चाहिए और इसे ठीक से संग्रहीत किया जाना चाहिए। पशुओं के रहने व उन्हें बाँधने का स्थान साफ़ सुथरा व हवादार होना चाहिए एवं उनका आवास प्रबंधन उत्तम होना भी जरुरी है। गोबर, मूत्र, चारा और चारा अवशेषों को निपटाने के लिए उपयुक्त व्यवस्था के साथ शेड आरामदायक और साफ होना चाहिए। स्वच्छ पेयजल और बिजली की उचित आपूर्ति होनी चाहिए एवं दूध दूहने से पहले शेड को अच्छी तरह से धोना चाहिए।

देश के लगभग हर राज्यों में दुग्ध का उत्पादन व उपभोग बहुतायत में किया जाता है, जिसे तालिका-2 में दर्शाया गया है। देश के दस प्रमुख दुग्ध उत्पादक राज्यों में उत्तर प्रदेश भारत में सबसे अधिक दूध उत्पादित करने वाला राज्य है। देश के अन्य अग्रणी दुग्ध उत्पादन करने वाले राज्यों में राजस्थान दूसरे, मध्य प्रदेश तीसरे, आंध्र प्रदेश चौथे, गुजरात पांचवें, पंजाब छठे, महाराष्ट्र सातवें, हरियाणा आठवें, बिहार नौंवें व तमिलनाडू दसवें स्थान पर हैं।

भारत आज भी एक कृषि प्रधान देश है और यह पाया गया है कि अभी भी देश में जब-जब अच्छी बारिश होती है, तो कृषकों की फसल अच्छी होती है और जिस वर्ष वर्षा ऋतु मेहरबान नहीं होती, तो पूरी की पूरी फसल चौपट हो जाती है। देश के कई हिस्सों में बारिश की कमी से कई बार कृषकों की आय काफी कम हो जाती है और इस परिस्थिति में छोटे व मध्यम वर्ग के किसानों की स्थिति काफी दयनीय हो जाती है। आजादी के लगभग सत्तर वर्षों के बाद भी देश की लगभग 50 से 60 प्रतिशत से अधिक खेती प्रायः वर्षा के पानी पर ही आश्रित है। रबी की फसल की कटाई के पश्चात् मई-जून माह से ही पूरे देश के कृषकों को प्रायः हर वर्ष बारिश का बेसब्री से इंतजार करना पड़ता है। मानसून की स्थिति व बारिश पर कृषि की निर्भरता के कारण देश की इतनी बड़ी आबादी का पेट भरने वाले कृषक सूखे की स्थिति में खुद भी दाने-दाने को मोहताज हो जाते हैं। सूखे की हालत में छोटे व मध्यम वर्गीय कृषकों के पूरे परिवार व पशुओं, गाय-बैल, भैंस, बकरियों आदि की स्थिति भी बहुत ही दयनीय हो जाती है। ऐसी हालत में जिन कृषकों के पास अतिरिक्त आय के स्रोत होते हैं जैसे पशुपालन, डेरी आदि वे इन परिस्थितियों का सामना अच्छी तरह से कर लेते हैं, परन्तु सिर्फ कृषि पर आधारित कृषकों की स्थिति दयनीय हो जाती है। डेरी व पशुपालन इस अवस्था में कृषकों के समक्ष अतिरिक्त आय हेतु एक बहुत ही अच्छा विकल्प साबित हो सकता है।

डेरी के क्षेत्र में आत्मनिर्भर भारत में डेरी व्यवसाय से जुड़े कृषकों की सच्ची लगन व मेहनत ही सम्पूर्ण देश में दूध की उपलब्धता सुनिश्चित करती है, साथ ही साथ देश के प्रत्येक क्षेत्र व भाषा के दुग्ध उत्पादकों व कृषकों की ईमानदार मेहनत का सुखद परिणाम ही है, जिससे भारत दुग्ध के क्षेत्र शीर्ष पर पहुंचा है। भारत दुनिया में दुग्ध उत्पादन में प्रथम स्थान पर विराजमान है व पूरे विश्व के कुल दुग्ध उत्पादन का 18.5 प्रतिशत उत्पादन करता है, जिसमें देश के हरेक प्रत्येक क्षेत्र व भाषा के कृषकों का पूरा योगदान है। संपूर्ण देश के कृषकों ने सिर्फ क्षेत्रीय भाषाओं में लगन से कार्य करके वर्ष 1997 से भारत को दुनिया का शीर्ष दुग्ध उत्पादक देश बनाया है, साथ ही वर्ष 2014 में भारत ने पहली बार पूरे यूरोपीय संघ से अधिक दुग्ध का उत्पादन किया। डेरी का विकल्प भारत के पर्यावरण के हिसाब से सर्वोत्तम है। दूध के साथ साथ पनीर, खोया एवं अन्य दूध उत्पाद आदि भी से भी कृषकों की आय में अच्छी वृद्धि संभव है। गाय के दुग्ध से निर्मित विभिन्न उत्पाद भारत ही नहीं पूरे विश्व में बहुत ही लोकप्रिय होने के साथ- साथ हमारे दैनिक आहार में उच्च गुणवत्ता वाले वसा, प्रोटीन, विटामिन, मिनरल, यथा कैल्शियम व फॉस्फोरस आदि का उत्तम स्रोत भी हैं। हिन्दी भाषा के साथ साथ सभी क्षेत्रीय भाषाओं को पूरे देशवासियों ने अपने में आत्मसात किया है। इस COVID- 19 जैसी महामारी के दौरान भी देश के प्रत्येक कोने-कोने में स्थित लाखों करोड़ों घरों में बिना किसी व्यवधान के दुध पहुंचाया गया। डेरी प्लांटों में स्प्रे ड्रायर तकनीक द्वारा दूध पाउडर का उत्पादन किया गया एवं आत्मनिर्भर भारत के किसी भी कोने में दूध व दुग्ध उत्पादों की कोई कमी नहीं हुई। विगत वर्ष के लॉकडाउन के दौरान 1.35 अरब के इस देश में हर घर को दूध की निर्बाध आपूर्ति सुनिश्चित की गई और लाखों डेयरी किसानों के हितों की रक्षा की गई, जो देश के सभी क्षेत्रीय व हिन्दी भाषीय कृषकों की ईमानदार व निःस्वार्थ मेहनत से ही हो पाया और इससे यह साबित होता है कि भारत सम्पूर्ण देश को दुग्ध की निर्बाध आपूर्ति में पूर्णतः सक्षम व आत्मनिर्भर है।

निष्कर्ष

देश में डेयरी विकास बोर्डों की मदद से छोटे डेरी फार्म में व विभिन्न सहकारी डेयरी फेडरेशन आदि द्वारा विभिन्न प्रकार के अभियान चलाकर व गांवों में अच्छे पशुपालन प्रथाओं द्वारा स्वच्छ दूध का उत्पादन किया जा रहा है। भारत को दुनिया में नंबर एक दूध उत्पादक के रूप में लाने के लिए ग्राम उद्यमिता, उत्तम पशुपालन व्यवस्था, उचित चारे की व्यवस्था, पशुओं के

उपचार एवं दवा के इंतजाम आदि मुख्य कारक हैं। शुद्ध दुग्ध उत्पादन की प्रणाली को नियंत्रित करने के लिए पहला कदम दूध दूहने से पहले पशुओं के थन की स्वच्छता, हाउसकीपिंग की स्वच्छता, दूध देने के तरीकों और अच्छे पशुपालन प्रथाओं के पालन हेतु समय समय पर दूध उत्पादकों की लिए जरूरी शिक्षा और प्रशिक्षण आवश्यक हैं, ताकि डेरी कृषकों के बढ़ते लाभ के साथ साथ देश का डेरी के क्षेत्र में सर्वोपरि स्थान बना रहे।

References

1. चित्रनायक, राकेश कुमार, प्रशांत मिंज, अमिता वैराट, खुशबू कुमारी, जितेन्द्र डबास व सुनील कुमार, छोटे किसानों के लिए पनीर बनाने की तकनीक, दुग्ध सरिता, इंडियन डेरी एसोसिएशन, वर्ष -2, अंक-6, नवम्बर - दिसम्बर, 2018, पृष्ठ- 8-11

2. चित्रनायक*, एम. मंजुनाथ, महेश कुमार, प्रशांत मिंज, अमिता वी, खुशबू कुमारी, जितेन्द्र डबास व सुनील कुमार, गाय के दुग्ध से पनीर बनाने की स्वचालन तकनीक, खेती, भाकृअनुप-भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली, हिन्दी पत्रिका, वर्ष -71, अंक-11, मार्च- 2019, पृष्ठ- 6- 8

3. चित्रनायक, प्रशांत मिंज, जितेन्द्र डबास, अमिता वैराट, खुशबू कुमारी, व सुनील कुमार, स्वचालन तकनीक द्वारा दही उत्पादन, दुग्ध सरिता, इंडियन डेरी एसोसिएशन, वर्ष -3, अंक-3, मई -जून, 2019, पृष्ठ- 25-28

4. चित्रनायक*, मंजुनाथ एम, महेश कुमार, राकेश कुमार, प्रशांत मिंज, अमिता वैराट, खुशबू कुमारी, जितेन्द्र डबास, लघु व मध्यम वर्गीय कृषकों हेतु पनीर बनाने की उन्नत व विकसित तकनीक का विकास, दुग्ध गंगा, भाकृअनुप - राष्ट्रीय डेरी अनुसंधान संस्थान, अंक -8, वर्ष -2018-2019, पृष्ठ-10 -15

❖❖

सूक्ष्म जीवों से मृदा एवं पर्यावरण सुधार

खलील खान[1]* एवं मनोज मिश्रा[2]

[1]कृषि विज्ञान केन्द्र, कन्नौज प्रसार निदेशालय

[2]शोध निदेशालय, चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर

Corresponding Author - Khankhalil64@gmail.com

परिचय

पर्यावरण शब्द का अर्थ है अपने चारों ओर के आवरण से ढका हुआ वातावरण जो सभी भी जीव जन्तु को अपने अन्दर संजोय हुए है। पर्यावरण शब्द प्रकृति से जुड़ा हुआ है। यहाँ हम सभी तरह के जीव-जन्तु तथा अन्य जीव व निर्जीव वस्तुओं से परिपूर्ण हैं।

मानव की उपस्थिति के अनुसार पर्यावरण को हम दो भागों में बाँट सकते हैं-

क. प्राकृतिक पर्यावरण

ख. मानव निर्मित पर्यावरण

आधुनिक जीवन में मानव द्वारा प्राकृतिक वस्तुओं के साथ छेड़-छाड़ के क्रियाकलापों ने ही प्राकृतिक वातावरण का संतुलन नष्ट किया है जिसके कारण प्राकृतिक व्यवस्था बिगड़ गई है। इसी कारण पर्यावरण की समस्या उत्पन्न हुई है।

पर्यावरण प्रदूषण

पर्यावरण प्रदूषण से आशय वातावरण में दूषित पदार्थों का घुलना या उनका अनुपात का असहमत होना होता है। इन सभी प्रदूषकों का घातक प्रभाव उस वातावरण में रहने वाले जीव-जन्तु को परेशानी में डाल सकता है। प्रदूषित पदार्थ निम्न प्रकार के हो सकते हैं-

1. शोर
2. गर्मी
3. प्रकाश के तत्व

ये स्रोत प्राकृतिक या अप्राकृतिक रूप से मौजूद होते हैं और जब यह प्राकृतिक स्तर को पार कर लेते हैं, तब उन्हें प्रदूषक कहा जाता है। मानव पर्यावरण का एक महत्वपूर्ण भाग है। अतः पर्यावरण में होने वाली विभिन्न प्रकार की गतिविधियों से इसका जीवन भी प्रभावित होता है। इस कारण यह आवश्यक है कि हमारा पर्यावरण असंतुलित न हो और स्वच्छ बना रहे।

आधुनिक समय में हमारे पर्यावरण में असंतुलन की स्थिति उत्पन्न होती है। हमारी मृदा, जल, वायु व वन सभी प्रदूषित हो रहे हैं। जिसके कारण जैव-विविधता के लिए संकट, बाढ़, सूखा व अन्य प्राकृतिक समस्यायें उत्पन्न हो रही हैं। इस कारण अब समय हमें यह चेतावनी दे रहा है कि हमें प्राकृतिक स्रोतों की शुद्धता बनाये रखने के लिए प्रयास करना होगा।

पर्यावरण में सूक्ष्मजीवों का उपयोग

मृदा में मुख्य रूप से फफूंद ही हैं, जो उपस्थित रहते हैं तथा इनकी पदार्थों के अपघटन में महत्वपूर्ण भूमिका है। इनका मुख्य कार्य हानिकारक पदार्थों को पोषक तत्वों में परिवर्तित करना होता है। **कम्पोस्टिंग** इसका सबसे अच्छा उदाहरण है जो पूर्ण रूप से एक जैविक प्रक्रिया है, जिसमें फफूंद द्वारा ही वायुवीय दशाओं में जैविक पदार्थों का जैविक अपघटन होता है। फफूंद का अपघटित पदार्थों की अपघटित क्रिया के द्वारा ही कम्पोस्ट बनाने में सहायता करते हैं। अपने वातावरण को शुद्ध रखने के लिये तथा अपने देश की मिट्टी को उपजाऊ बनाने के लिये इन्हें **'किसानों के मित्र'** के रूप में जाना जाता है।

फसल के अवशेषों को जलाने से उसमें उपस्थित मुख्य पोषक तत्व जैसे नाइट्रोजन, फास्फोरस एवं पोटाश जलकर नष्ट हो जाते हैं और बहुत सी विषैली व जहरीली गैसें कार्बन डाई ऑक्साइड, कार्बन मोनो ऑक्साइड, मीथेन, बेंजीन आदि का प्रभाव वातावरण को दूषित करता है। इस कारण फसल अवशेषों का कम्पोस्ट में परिवर्तित कर देना चाहिये। जिससे मृदा में जीवांश कार्बन की बढ़ोत्तरी होती है।

प्रदूषण की समस्या हेतु निदान

कृषि कार्य में सिंचाई हेतु बड़ी मात्रा में जल का उपयोग होता है। कृषि में उपयोग होने वाले पानी के उस भाग को छोड़कर जो कि वाष्पित हो जाता है या भूमि द्वारा सोख लिया

जाता है, शेष बहकर पुनः जल धाराओं में मिल जाता है। इस तरह यह जल खेतों में डाली गई प्राकृतिक या रासायनिक उर्वरकों सहित कीटनाशकों, कार्बनिक पदार्थों, मृदा एवं इसके अवशेषों आदि को बहाकर जलस्रोतों में मिला देता है।

दूषित जल में उपस्थित कार्बनिक पदार्थों का प्रभाव

मल, जल या इसी प्रकार के दूषित जल जिसमें कार्बनिक पदार्थ बड़ी मात्रा में उपस्थित होते हैं। स्वच्छ जलस्रोतों में मिलकर उनका बी.ओ.डी. (बायोलॉजिक ऑक्सीजन डिमांड) भार बढ़ा देते हैं अर्थात ऐसे कार्बनिक पदार्थ (जो कि जैविक रूप से विनष्ट होते हैं), के जलस्रोतों में मिलने से सूक्ष्म जीवाणुओं की क्रियाशीलता से जल में घुलित ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है साथ ही हानिकारक बैक्टीरिया के पेयजल में वृद्धि करने से डायरिया, हेपेटाइटिस, पीलिया आदि रोगों सहित अनेक चर्म रोगों के होने का खतरा भी बन जाता है।

हमारे देश में प्रतिवर्ष प्रदूषित पेयजल से होनेवाली बीमारियों के कारण अनेक मौतें होती है। विशेषकर वर्षा ऋतु के समय जब रोगाणुओं के पनपने के लिये अनुकूल दशाएं मिलती हैं और पेयजल से होने वाली बीमारियों का खतरा भी बढ़ जाता है। स्वच्छ जल में फॉस्फेट एवं नाइट्रेट युक्त कार्बनिक यौगिकों के मिलने से जल में पोषक तत्वों की वृद्धि के कारण इनमें पाये जाने वाले शैवालों एवं अन्य जलीय पादपों की संख्या में अप्रत्याशित वृद्धि होती है इस घटना को **'यूट्रोफिकेशन'** कहा जाता है। किसी जलस्रोत में कार्बनिक पदार्थ नाइट्रेट एवं फास्फेट के मिलने से उनमें इन पोषक तत्वों की सांद्रता बढ़ने के कारण जलीय वनस्पतियों की वृद्धि दर का बढ़ना ही यूट्रोफिकेशन है।

फंफूद की भूमिका

फंफूद को जैवीय विघटन की क्रिया के बाद खाद बनाने का नया विचार आजकल आधुनिक कृषि में बहुत उपयोगी है। इसके लिये लिग्नीसेल्युलोलिटिक फंफूद का कम्पोस्ट कल्चर बनाया जाता है। यह कम्पोस्ट मृदा में उपस्थित पोषक तत्वों का सुधार कर देती है। अतः इसे जैविक खाद के रूप में प्रयोग किया जाता है।

कम्पोस्ट के उपयोग होने वाले लाभ

- कम्पोस्ट को उपयोग में लाने वाले के कारण मिट्टी के अन्दर अधिक मात्रा में कार्बनिक पदार्थ का संग्रह हो जाता है, जो बहुत उपयोगी होता है।
- कम्पोस्ट के लगातार उपयोग में लाने से मिट्टी की अपने अंदर वायु व पानी को अवशोषित करने की क्षमता में वृद्धि हो जाती है।
- इस कम्पोस्ट के उपयोग से मिट्टी के स्वास्थ्य में काफी सुधार होता रहता है।
- खाद की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिये खनिजों और सूक्ष्म जीवाणुओं को एक साथ बनाया जाता है।
- इस कम्पोस्ट का एक विशेष गुण यह है कि वह अपने वजन से चार गुना अधिक पानी को मृदा की जल अवशोषण क्षमता बढ़ा देता है।

पर्यावरण को स्वस्थ रखने के लिये किसानों को कृषि अपशिष्ट को कभी भी नष्ट या जलाना नहीं चाहिये।

फसल में कीटों से बचाव के लिए किसान रासायनिक कीटनाशी का छिड़काव करते हैं, जो वातावरण और इंसानों के लिए खतरनाक होते हैं। ऐसे में किसान हानिकारक कीटों से बचाव के लिये सूक्ष्मजैविक प्रबंधन कर सकते हैं।

हमारी प्रकृति में बहुत से ऐसे सूक्ष्मजीव हैं जो रोगों को उत्पादन नहीं होने देते हैं जैसे विषाणु, जीवाणु व फफूँद आदि। इन्हीं विषाणु, जीवाणु व फफूँद आदि को वैज्ञानिकों ने पहचानकर प्रयोगशाला में इनका बहुगुणन किया है, जिससे अनेक किसानों को लाभ मिल रहा है।

जीवाणु (बैक्टीरिया)

मित्र जीवाणु प्रकृति में स्वतंत्र रूप से भी पाए जाते हैं लेकिन उनके उपयोग को सरल बनाने के लिए इन्हें प्रयोगशाला में कृत्रिम रूप से तैयार करके बाजार में पहुँचाया जाता है, जिससे कि इनके उपयोग से फसल को नुकसान पहुँचाने वाले कीड़ों से बचाया जा सकता है।

(अ) बैसिलस थुरिजिनिसिस- यह एक बैक्टीरिया आधारित जैविक कीटनाशक है। इसके प्रोटीन निर्मित क्रिस्टल में कीटनाशक गुण पाये जाते हैं, जो कि कीट के आमाशय का घातक जहर है। यह लेपिडोपटेरा और कोलिओपेटेरा वर्ग की सुंडियों की 90 से ज्यादा प्रजातियों पर प्रभावी है। इसके प्रभाव से सुंडियों के मुखांग में लकवा हो जाता है जिसके कारण सुंडियां खाना छोड़ देती हैं और सुस्त हो जाती हैं तथा 4-5 दिन में मर जाती हैं। यह जैविक कीटनाशक सुंडी की प्रथम और द्वितीय अवस्था पर अधिक प्रभावशाली है। इनकी चार अन्य प्रजातियाँ बैसिलस पोपुली, बैसिलस स्फेरिक्स,

बैसिलस मोरिटी, बैसिलस लेतीमोर्बस भी कीट प्रबंधन के लिए पाई गई है। इस जीवाणु से विभिन्न फसलों में नुकसान पहुँचाने वाले शत्रु कीटों जैसे- चने की सुंडी, तम्बाकू की सुंडी, सेमिल पर लाल बालदार सुंडी, सैनिक कीट एवं डायमंड बैक मोथ आदि के विरूद्ध एक किग्रा0 प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करने पर अच्छा परिणाम मिलता है।

(ब) वायरस- (एन.पी.वी.)

- **न्यूक्लियर पॉली हाइड्रोसिस वायरस-** यह वायरस प्राकृतिक रूप से मौजूद सूक्ष्म जैविक है। वे सूक्ष्म जीव जो केवल न्यूक्लिक एसिड एवं प्रोटीन के बने होते हैं, वायरस कहलाते हैं। यह कीट की प्रजाति विशेष के लिए कारगर होता है। चने की सुंडी के लिए एन.पी.वी. व तम्बाकू की सुंडी के लिए एन.पी.वी. का प्रयोग किया जाता है।

- **ग्रेनुलोसिस वायरस-** इस सूक्ष्मजैविक वायरस का प्रयोग सूखे मेवे के भण्डार, कीटों, गन्ने की अगेती तना छेदक, इन्टरनोड़ बोरर और गोभी की सुंडी से बचने के लिए किया जाता है। यह विषाणु संक्रमित भोजन के माध्यम से कीट के मुख में प्रवेश करता है और मध्य उदर में वृद्धि करता है। कीट की मृत्यु पर विषाणु वातावरण में फैलकर अन्य कीटों को संक्रमित करते हैं। गन्ने और गोभी की फसल में कीट प्रबंधन के लिए 1 किग्रा0 पाउडर का 100 ली0 पानी में घोल बनाकर छिड़काव करने से कीड़ों की रोकथाम में मदद होती है।

(स) सूक्ष्मजैविक रोगनाशक

ट्राइकोडर्मा- यह एक प्रकार की मित्र फफूँदी है जो खेती को नुकसान पहुंचाने वाली हानिकारक फफूँदी को नष्ट कर देती है। ट्राइकोडर्मा के प्रयोग से विभिन्न प्रकार की दलहनी, तिलहनी, कपास, सब्जियों एवं विभिन्न फसलों में पाये जाने वाली मृदाजनित रोग जैसे उकठा, जड़ गलन, कालर सड़न, आद्रपतन कन्द सड़न आदि बीमारियों को रोकती है।

औद्योगिक अपशिष्ट

कृषि व कृषि उत्पाद आधारित उद्योगों से बड़ी मात्रा में कार्बनिक पदार्थयुक्त दूषित जल उत्पन्न होता है जैसे डिस्टलरीज, चीनी कारखाने, धान मिलें, खाद्य प्रसंस्करण इकाइयाँ आदि। इनके दूषित जल में काफी मात्रा में कार्बनिक पदार्थ होते हैं जिनमें फॉस्फेट एवं नाइट्रेट आदि बड़ी मात्रा में उपस्थित होते हैं।

अतः विभिन्न गतिविधियों के कारण सुपोषण की दर का बढ़ना उत्प्रेरित सुपोषण कहलाता है। ऐसा होने पर झील या तालाब में जलीय वनस्पतियों की वृद्धि दर अचानक बढ़ जाती है। सुपोषण जल के भौतिक, रासायनिक एवं जैविक गुण धर्मों पर प्रभाव डालता है। जलस्रोत में वनस्पतियों की तीव्र वृद्धि दर जलस्रोत के सामान्य संतुलन की स्थिति को भंग कर देती है।

सामान्यतः कृषि में प्रयुक्त सूक्ष्मजीवों में राइजोबियम, माइकोराइजा एजोस्पाईरिलम, बैसिलस, सूडोमोनास, ट्राइकोडर्मा, स्टेप्टोमाइसीज आदि सभी प्रजातियों का उपयोग पर्यावरण के सुधार में होता है।

नाइट्रोजन को स्थिर करने में उपयोगी बैक्टीरिया

पर्यावरण की स्थिरता के लिये वायुमण्डलीय नाइट्रोजन स्थिरीकरण एवं सहजीविता के माध्यम से प्रतिवर्ष दलहनी फसलों से कुल 2.95 लाख टन एवं तिलहनी फसलों द्वारा 18.5 लाख टन वायुमण्डलीय नाइट्रोजन के स्थिरीकरण का अनुमान लगाया जा रहा है। इस प्रक्रिया में नाइट्रोजन नामक एंजाइम उपयोगी है जो मुख्यता वातावरण के बैक्टीरिया में मिलता है।

मूल रूप से नाइट्रोजन स्थिर करने वाले बैक्टीरिया जैसे- एजोस्पाईरिलम, एजोटोबैक्टर, एसीबैक्टर, डाईएजोट्राफिक्स, हर्बास्पाईरिलम, बैसिलस एवं एजोआरकस आदि फसलों के मूल क्षेत्र में पाये जाते हैं। इनके सफल प्रयोग के लिए निम्नलिखित बातों का ध्यान आवश्यक हो जाता है जिससे इन लाभकारी सूक्ष्मजीवों का प्राथमिक उत्पादन एवं जलवायु परिवर्तन अनुकूलन में अधिकतम लाभ उठाया जा सके।

1. प्रभावी कार्यात्मक नाइट्रोजन स्थिरीकरण करने वाली प्रजातियों की पहचान जो फसल एवं क्षेत्र विशिष्ट होते हैं।

2. मृदा एवं पर्यावरण कारकों की पहचान जो आनुवंशिक विविधता एवं मुक्त रूप से किये जाने वाले नाइट्रोजन स्थिरीकरण को विनियमित है।

फॉस्फोरस की घुलनशीलता बढ़ाने वाले सूक्ष्मजीव

पेड़-पौधों एवं माइकोराइजा कवक की सहजीवी क्रिया लम्बे समय से पोषक तत्व संवहन एवं अंतर्ग्रहण से पौधों को लाभ प्रदान करने के लिये प्रसिद्ध है। इनका उपयोग मृदा के गुणों के आधार पर अलग-अलग होते हैं। एस्परजिलस तथा पेनिसिलियम जैसे कवक मिट्टी में फास्फोरस की घुलनशीलता को बढ़ाकर पौधों के लिये उपलब्ध रूप में प्रदान करने के साथ -साथ इसका खनिजीकरण करने में सक्षम होते हैं। अतः मृदा में उपलब्ध फॉस्फोरस के इस सीमित मात्रा का उपयोग इनका लाभ उठाने में किया जाता है।

पादप विकास में सहायक राइजोबैक्टीरिया

कृषि एवं बागवानी में पौधों के विकास एवं रोग नियंत्रण के लिए इनका विपणन किया जाता है। राइजोबैक्टीरिया अनेक प्रकार से पौधों के विकास के मूल एवं प्ररोह विकास में वृद्धि करते हैं जैसे- हार्मोन्स अथवा द्वितीय उपचायक बनाकर, रोगों का नियंत्रण, दैहिक प्रतिरोध को जागृत करना एवं पौधों के भौतिक एवं रासायनिक व्यवहार में बदलाव, अजैवीय कारकों जैसे- सूखा और अधिक लवणता की दशा में भी जीवित रहने वाले ऐसे बैक्टीरियल टीकों की खोज की जा रही है जिनका जैव उर्वरक के रूप में प्रयोग किया जा सके।

पौधों के लिये खाद्य पदार्थ

पौधों के मूल परिवेश में जीवाणु समूहों की पौध-विशिष्ट वृद्धि से ज्ञात होता है कि पौधों का क्रमिक विकास विशेष प्रकार के जीवाणु समूह, जो एंटीबायोटिक बनाने में सक्षम होते हैं, के कारण हो सकता है एवं जो मृदा जन्य बीमारियों से बचाव युक्तिपूर्वक वृद्धि और भरण पोषण करने के लिये भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

मृदा में सूडोमोनास प्रजाति वाले बैक्टीरिया सर्वव्यापक होने के साथ-साथ अत्यधिक संख्या में पाये जाते हैं और इन्हें विभिन्न प्रक्रियाओं जैसे पौध-वृद्धि उत्प्रेरक एवं अन्य अवरोध, रोग नियंत्रण, नाइट्रोजन स्थिरीकरण, पारिस्थितिकी पोषक चक्र तथा जैव निदान इत्यादि से जोड़ा गया है। मिट्टी के भौतिक, रासायनिक, कार्बन एवं पोषक तत्वों जैसे गुणों में परिवर्तन आने पर ये बैक्टीरिया तुरंत प्रतिक्रिया दिखाते हैं जिसके कारण इन्हें कृषि परितंत्रों में योगदान के लिये महत्वपूर्ण माना जाता है।

उन्नत कृषि एवं बागवानी के लाभदायक जीवाणुओं की गतिविधियों एवं क्रियाशीलता में वृद्धि करके इनका महत्वपूर्ण योगदान प्राप्त कर सकते हैं।

सूक्ष्मजीवों के प्रयोग में होने वाली सावधानियाँ

सूक्ष्मजीवियों पर सूर्य की परा-बैंगनी किरणों का विपरीत प्रभाव पड़ता है, अतः इनका प्रयोग संध्या काल में करना उचित होता है। सूक्ष्मजैविकों विशेषरूप से कीटनाशक फफूँदी के उचित विकास हेतु पर्याप्त नमी व आर्द्रता की आवश्यकता होती है। सूक्ष्मजैविक नियंत्रण में आवश्यक कीड़ों की संख्या एक सीमा से ऊपर होनी चाहिए। इनका जीवनकाल कम होता है। अतः इनके प्रयोग से पूर्व उत्पादन तिथि पर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

निष्कर्ष

वर्तमान समय में किसानों द्वारा कीटनाशकों के प्रयोग के कारण मृदा के पोषक तत्वों में कमी होती जा रही है एवं इनके प्रयोग से मृदा प्रदूषण भी बढ़ता जा रहा है। यदि इन सूक्ष्म जीवाणुओं और विषाणुओं का उपयोग मृदा में किया जाता है तो प्राकृतिक तरीके से खेतों में रोगनाशक का काम करती है साथ ही मृदा के पोषक तत्वों में वृद्धि होती है और ये प्रदूषण को भी कम करने में सहायक होती है।

❖❖

ट्रेलिस एवं मचान विधि द्वारा करेले की जैविक खेती

अमृता जाधव[1], विजय बहादुर[2*] एवं फूलचन्द चौरसिया[3]

[1,2] उद्यान विभाग, शुआट्स प्रयागराज

[3]उद्यान विभाग, कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केन्द्र, महासमुंद्र

Corresponding Author - vijaybahadur2007@gmail.com

परिचय

करेले की खेती सम्पूर्ण भारत में की जाती है। इसका फल खुरदरी सतह वाला और कड़वा होता है लेकिन उच्च पोषक तत्वों और औषधीय गुणों से युक्त होने के कारण इस सब्जी का जन-जीवन में बड़ा ही महत्व है। इसका ग्रीष्मकालीन सब्जियों में महत्वपूर्ण स्थान है।

करेले में मौजूद पोषक तत्व और औषधीय गुण

इसमे विटामिन ए, विटामिन बी6, विटामिन सी, विटामिन ई, राइबोफ्लेविन, पेंटोथेनीक एसिड, फोलेट, लाइकोपेन, नियसिन, पोटेशियम, कैलिशयम, आयरन, मैंगनिशियम, फॉस्फोरस, कॉपर, जिंक और पानी पाया जाता है। करेला शरीर में शर्करा के स्तर को कम करने में मदद करता है, जिससे डायबिटीज में लाभ होता है। करेले के उपयोग से रक्त की सारी अशुद्धियाँ दूर हो जाती हैं और रक्त कोशिकाओं को भी साफ करने में मदद मिलती है।

करेला की खेती के लिये जलवायु

करेला की खेती के लिए आर्द्र जलवायु की जरूरत पड़ती है । करेला के पौधों की खासियत है कि यह अन्य कद्दू वर्गीय फसलों की अपेक्षा अधिक शीत सहन कर सकता है, पर अधिक वर्षा से फसल की उपज घट जाती है। करेला की खेती के लिए उत्तर एवं मध्य भारत की जलवायु अधिक अनुकूल मानी गयी है।

भूमि

इसको विभिन्न प्रकार की भूमियों में उगाया जा सकता है, किन्तु उचित जल धारण क्षमता वाली जीवांशयुक्त हल्की दोमट मिट्टी इसकी सफल खेती के लिए उत्तम मानी गई है। वैसे उदासीन पी. एच. मान वाली मृदा इसकी खेती के लिए अच्छी रहती है।

प्रजातियाँ

इसकी विभिन्न प्रजातियाँ पूसा 2 मौसमी एकोयम्बूर

लौंग, अर्का हरित, कल्याणपुर बारह मासी, हिसार सेलेक्शन, पूसा विशेष,फैजाबादी बारह मासी, पूसा संकर है।

बीज मात्रा

करेले की खेती के लिए 5-6 किलोग्राम बीज प्रति हैक्टेयर बुवाई के लिए काफी होता है।

बीज को अंकुरित करने के लिए क्या करे ?

बीज को बुवाई से पहले उसको 24 घंटे पानी में भींगा दे और उसको 24 घंटे के बाद बाहर निकाले और उसको राख में लपेट कर या सूती कपड़े में लपेट कर रख दे ताकि अच्छे से अंकुरित हो जाये। अगर आपके पास गोबर है, तो आप

उसके मदद से भी अंकुरण कर सकते है। गोबर से अंकुरित के लिए जहां आपने गोबर जमा किया है वहां एक गड्ढा बनाये और उसमे बीज डाल दे 4 दिन बाद उसको निकाल कर उसका अंकुरण चेक करे। अगर अंकुरित हो जाये तो उसकी बुवाई कर दे क्योंकि बहुत बार हम आगे बुवाई तो कर देते है, लेकिन ठंड के कारण बीज जल्दी अंकुरित नहीं हो पाते अगर आप अंकुरित कर लेते है तो आपको अच्छा पैसा कमाने से कोई नहीं रोक सकता है। आप छोटी सी मात्रा में एक बार ये टिप्स जरूर इस्तेमाल करे जब आपको पूरा संतुष्टि मिल जाये तब बड़ी मात्रा में करे।

बीज बुवाई

एक स्थान पर से 2 -3 बीज 2.5-3.0 से.मि. की गहराई पर बोने चाहिए।

बोने का समय

गर्मी में इसकी बुवाई का उचित समय 15 फरवरी से 30 फरवरी तथा वर्षाकाल में 15 जुलाई से 30 जुलाई होता है।

बुवाई विधि

करेले की बुवाई दो प्रकार से की जाती है।

1. सीधे बीज से 2. पौध रोपण विधि से

1. सीधे बीज से : इस विधि में खेत तैयार करने के बाद बीजों को सीधे खेत में बो दिया जाता है।

2. पौध रोपण विधि से : इस विधि में पहले बीजों से पौध तैयार की जाती है और जब बुवाई का उचित समय आता है तो पहले से तैयार पौधों की बुवाई खेत में कर दी जाती है।

जैविक खाद का प्रयोग

करेले की फसल की अच्छी उपज के लिए खेत में खाद, कम्पोस्ट खाद का होना अनिवार्य है। इसके लिए गोबर की अच्छी प्रकार से सड़ी हुई 40-50 क्विंटल खाद साथ में 50 किलोग्राम नीम की खली का मिश्रण कर बुवाई पूर्व समान मात्रा में खेत में बिखेर दे। फसल उगने के 25-30 दिन बाद नीम का काढ़ा गौमूत्र के साथ मिलाकर मिश्रण तैयार कर छिड़काव करना चाहिए। हर 15-20 दिन के अंतराल पर छिड़काव करें।

सिंचाई

करेले की सिंचाई वातावरण, मिट्टी की किस्म आदि पर निर्भर करती है। ग्रीष्म ऋतु में फसल की सिंचाई 3-5 दिन के अंतराल में करनी चाहिए। जबकि वर्षाकाल में सिंचाई वर्षा पर निर्भर करती है।

पौधे की देखभाल

अधिक उपज एवं फसल की बेहतर गुणवत्ता के लिए करेले की कटाई छटाई बहुत ही आवश्यक है। जैसे करेला में 3-7 गाँठ तक सभी द्वितीय शाखाओं को काट देना चाहिए।

मचान बनाना

इस विधि का प्रयोग वर्षाकाल में किया जाता है। करेले के पौधों में सहारा देना अति आवश्यक है। इसके लिए लोहे की एंगल या बांस की लकड़ी से मचान बनाते है। खम्भों के ऊपरी सिरों पर तार बांध कर पौधों को मचान पर चढ़ाया जाता है। सहारा देने के लिए दो खम्भों के बीच की दूरी 2 मीटर रखते है लेकिन ऊँचाई फसल के अनुसार अलग-अलग होती है करेला के लिए 4.5 फीट रखते है।

ट्रेलिस विधि द्वारा

करेले में आम तौर पर पौधों को सहारा देने या सधाई करने के लिए ट्रेलिस का उपयोग किया जाता है। यह हार्डस्केपिंग (आर्किटेक्चरल स्ट्रक्चर) आमतौर पर बांस, लकड़ी या धातु से बना होता है और इसका उपयोग वर्टिकल गार्डन में भी किया जाता है। कुछ पौधे स्वचालित रूप से खुद को ट्रेलिस के चारों ओर लपेटते हैं। दूसरों को एक निश्चित दिशा में बढ़ने के लिए सधाई करने की आवश्यकता होती है। इसमे कतार के दोनो छोर में खम्भे गाड़े जाते है और उनमें क्षितिज के समानान्तर दिशा में नारियल की मोटी रस्सी या तार की तीन से चार परत 45-60 से.मी. की दूरी पर बांधा जाता है। तत्पश्चात् उनमें करेले की लताओं को चढ़ाया जाता है।

मचान और ट्रेलिस विधि से लाभ

मचान और ट्रेलिस विधि से खेती करने से कई लाभ हैं। मचान का प्रयोग सब्जी उत्पादक बेल वाली सब्जियों को उगाने में करते हैं। मचान के माध्यम से किसान 90 प्रतिशत फसल को खराब होने से बचा सकता है। मचान की खेती के रूप में सब्जी उत्पादक करेला जैसी फसलों में प्रयोग करते हैं। बरसात के मौसम में मचान की खेती फल को खराब होने से बचाती है। फसल में यदि कोई रोग लगता है तो मचान के माध्यम से दवा छिड़कने में भी आसानी होती है। ट्रेलिस विधि से कीट नियंत्रण प्रयासों की निगरानी में मदद कर सकती है क्योंकि यह पौधों को मिट्टी से कीड़े, कीड़े और अन्य परजीवी से दूर रखती है। फलों की सरल तुड़ाई में सहायक होता है।

खरपतवार नियंत्रण

पौधों के बीच खरपतवार उग जाते है। उन्हें खेत से हटा देना चाहिए। रोपाई के 10-15 दिन बाद हाथ से निराई-गुड़ाई कर लेनी चाहिए। पहली गुड़ाई के बाद जड़ो के आस-पास मिट्टी चढ़ानी चाहिए।

कीट एवं रोग नियंत्रण

करेले की फसल में निम्न कीट एवं रोगों का प्रकोप होता है जिनका उचित समय पर निवारण करना आवश्यक है।

लाल भृंग कीट

पौधों पर 2 पत्तियाँ निकलने पर इस कीट का प्रकोप शुरू हो जाता है। यह कीट पत्तियों और फलो को खा जाता है। इस कीट की सुंडी भूमि के अंदर पौधों की जड़ो को कटती है।

रोकथाम

लाल भृंगकीट की रोकथाम के लिये कम से कम 40-45 दिन पुराना गोमूत्र को ताम्बे के बरतन में रखकर 5 किलोग्राम धतूरे की पत्तियों एवं तने के साथ उबाले। 7.5 लीटर गोमूत्र शेष रहने पर इसे ठंडा करें एवं छान ले मिश्रण तैयार कर 3 लीटर प्रति टंकी पम्प से फसल पर छिड़काव करें।

फल मक्खी

यह मक्खी फलों में प्रवेश कर अण्डे देती है। अण्डों से बाद में सुंडी निकलती है और वे फल को बेकार कर देती है।

रोकथाम

फल मक्खी की रोकथाम के लिए 40-45 दिन पुराना गोमूत्र को ताम्बे के बर्तन में रखकर 5 किलोग्राम धतूरे की पत्तियों एवं तने के साथ उबाले। 7.5 लीटर गोमूत्र शेष रहने पर इसे ठंडा करें एवं छान ले मिश्रण तैयार कर 3 लीटर प्रति टंकी पम्प से फसल पर छिड़काव करें।

सफेद ग्रब

यह करेले के पौधों को काफी नुकसान पहुँचती है। यह मिट्टी के अंदर रहती है और पौधों की जड़ों को खा जाती है जिसके कारण पौधे सूख जाते है।

रोकथाम

इसकी रोकथाम के लिए नीम की खाद का प्रयोग 5-10 क्विंटल प्रति हेक्टेयर करें।

एन्थेक्नोज

यह रोग कोलेस्ट्रोट्राईकम प्रजाति के कारण होता है। इस रोग के कारण पत्तियों और फलों पर लाल काले धब्बे बन जाते है। ये धब्बे बाद में आपस में मिल जाते है। यह रोग बीज के द्वारा फैलता है।

रोकथाम

बीज के बोने से पूर्व गोमूत्र या नीम का तेल के साथ उपचारित करना चाहिये।

फल की तुड़ाई कैसे करे ?

फल को नरम अवस्था में ही तुड़ाई करना चाहिए क्योंकि ज्यादा दिन रखने पर वो कड़े हो जाते है, जिसे बाजार में बहुत काम लोग पसंद करते है। फसल की तुड़ाई हफ्ते में 2 से 3 बार करना चाहिए वैसे तो बुवाई के 80 से 90 दिन में तुड़ाई के लायक हो जाते है।

उपज

इसकी उपज 100-120 क्विंटल प्रति हेक्टेयर तक मिल जाती है।

निष्कर्ष

करेला एक पौष्टिक सब्जी है। यदि उपर्यक्त विधि द्वारा करेले की खेती की जाय एवं पेड़ पर लगने वाले रोग की रोकथाम जैविक तरीके से की जाय, तो मिट्टी की गुणवत्ता बनी रहती है, साथ ही साथ अधिक से अधिक करेले की उपज प्राप्त की जा सकती है।

❖❖

जड़ वाले सब्जियों के शरीर क्रियात्मक विकार

फूलसिंह मरकाम[1*] एवं प्रमोद कुमार नेताम[2]

[1,2]कृषि महाविद्यालय एवं अनुसंधान केन्द्र, इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर

Corresponding Author - markamphoolsingh@gmail.com

शरीर क्रियात्मक विकार

परिचय

सब्जियों में विभिन्न प्रकार के शारीरिक विकार ऊतक के टूटने से उत्पन्न होते हैं जिसे शरीर क्रियात्मक विकार या शारीरिक विकृतियां भी कहते हैं। ये व्याधियाँ किसी रोगजनकों के कारण नही होते हैं, बल्कि प्रतिकूल वातावरणीय दशा या किसी पोषक तत्व की कमी या यांत्रिक चोट के कारण होते हैं इसलिए इसे गैर-परजीवी या निर्जीव रोग भी कहते है। कार्यिकी व्याधियाँ मुख्यतया निम्नलिखित कारणों से होती हैः-

- पोषक तत्वों की असन्तुलित उपलब्धता।
- वातावरण के तापमान में त्वरित उतार चढ़ाव।
- नमी की कम या अधिक उपलब्धता।
- सिंचाई के पानी में घुलनशील लवण।
- हवा में जहरीले गैसीय प्रदूषण।
- मृदा अस्वस्थता अर्थात् मिट्टी के पीएच में कमी या अधिकता आदि के कारण पौधों के वृद्धि, उपज एवं गुणवत्ता आदि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। ये व्याधियाँ वंशानुगत रूप से भी अपनी अगली पीढ़ी में होती रहती हैं। अतः यदि कृषकगण व्याधिग्रस्त पौधे का बीज प्रयोग करते है तो ये व्याधियाँ अगली फसल में भी हो सकती है।

मूली के शरीरक्रियात्मक विकार

फोर्किंग या जड़ का कई भागों में बंट जाना

पहचान : इस विकार से मूली की मुख्य जड़ नीचे से कई भाग में विभक्त हो जाती है।

कारण : इसके निम्नलिखित कारण हो सकते है-

- मृदा में ज्यादा नमी का होना।
- मृदा का भारीपन या कठोर होना।
- मृदा में उपस्थित कार्बनिक पदार्थ का पूरी तरह से अपघटित न होना।

प्रबंधन : क्षेत्र के अनुसार सही प्रजाति का चुनाव करें।

- कठोर भूमि में छोटी जड़ वाली प्रजाति लगायें।
- भुरभुरी मिट्टी में लंबी जड़ों वाली प्रजातियों को लगायें।

2. जड़ों का फटना

पहचान : जड़ों पर लंबे खाली स्थान बन जाते हैं। प्रभावित जड़ ऐसा दिखता है जैसे कि मूली में दरार पड़ गयी हो।

कारण : यह व्याधि कैल्शियम की कमी से होती है। जब पोटेशियम का ज्यादा अवशोषण हो जाता है तब पौधे द्वारा कैल्शियम का अवशोषण कम हो पाता है। जिसके कारण पौधे में कैल्शियम की कमी हो जाती हैं।

प्रबंधन : मृदा परीक्षण के अनुसार कैल्शियम का प्रयोग करें।

- पोटेशियम का प्रयोग मृदा परीक्षण के अनुसार करें।

3. मूली में समय से पहले फूल आना

पहचान : मूली में खाने योग्य जड़ बनने से पहले ही फूल के तना का निकल जाना बोल्टिंग कहलाता है। जिससे जड़ों की गुणवत्ता कम हो जाती है।

कारण : बुआई हेतु हमेशा शुद्ध बीजों का ही प्रयोग करें।

- ऋतु के अनुसार उचित किस्मो का चयन एवं उचित समय पर बुआई नहीं करने से इस प्रकार की समस्या हो सकती है।

प्रबंधन : शुद्ध बीज का प्रयोग करें तथा देर से फूल आने वाली प्रजातियों का चयन करें।

- जिस पौधे में फूल निकल आया हो उसे उखाड़ कर खेत से निकाल देवें।
- उचित समय पर बुवाई करें।

4. मूली का अधिक तीखा हो जाना तथा हरापन आना

पहचान : इस विकार से मूली बहुत तीखी हो जाती है तथा उसके ऊपर रंगीन (हरे) धब्बे पड़ जाते है।

कारण : अधिक तापमान होने तथा नमी की कमी होने पर 4 -मिथाइलथायों-3- ब्यूटाइल आइसोथायोसाइनेट (MTB-ITC) नामक रसायन की मात्रा बढ़ जाती है, जिससे मूली में तीखापन आ जाता है। जब मूली की जड़ें जमीन के ऊपर निकल जाती है और प्रकाश के सम्पर्क में आने पर जड़ में हरापन आ जाता है। तब मूली बहुत तीखी हो जाती है।

प्रबंधन : समय से बुवाई करें।

- पर्याप्त नमी बनाये रखने के लिए निश्चित अंतराल पर सिंचाई करते रहें।
- मूली के जड़ो के ऊपर मिट्टी चढायें जिससे जड़ ऊपर न आ पायें।

5. पीथीनेस

पहचान : मूली के जड़ों के बीच में रूई की तरह आकृति हो जाना या मूली के जड़ों के उत्तकों का नष्ट होना। मूली को काटने पर बीच में रूई की तरह कुछ रूखापन लिये आकृति प्रतीत होती है तथा अंदर खालीपन नजर आता है।

कारण : मूली की जड़ के ऊतक के मरने के कारण यह व्याधि उत्पन्न होती है। यह एक प्राकृतिक कार्य है जो मूली की जड़ों की उम्र ज्यादा होने पर दिखलाई पड़ती है। यह वंशानुगत रूप से भी होती हैं।

प्रबंधन : ऐसी प्रजातियों का चयन करें जिसमें यह प्रक्रिया देर से शुरू होती हैं। इससे बचाव हेतु संतुलित मात्रा में खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग करें।

6. खोखलापन होना

पहचान : मूली की जड़ पर पानी सोखकर फूली हुई आकृति का होना तथा उसे खड़े काटने पर बीच में काले रंग का खाली स्थान होना मूली का खोखलापन कहलाता है।

कारण : पोषक तत्वों की असंतुलित उपलब्धता।

- यह व्याधि बोरान की कमी से भी हो सकती है।

प्रबंधन : लक्षण की शुरूआत में ही बोरान के 25 पी.पी.एम. के घोल का दो-तीन छिड़काव 15 दिन के अंतराल पर करें। इसके लिए 72 ग्राम सुहागा (बोरेक्स) लेकर 600 लीटर पानी में घोल बनाएं। यह घोल एक हेक्टेयर फसल में छिड़काव के लिए पर्याप्त होता है या फसल लगाने के पूर्व 10 कि.ग्रा. सुहागा (बोरेक्स) प्रति हेक्टेयर की दर से मृदा में प्रयोग करें।

गाजर के शरीरक्रियात्मक विकार

1 जड़ विभाजन : इसके नाम से ही स्पष्ट है कि इस विकार से गाजर की जड़े विभाजित हो जाती है। गाजर की व्यवसायिक खेती में जड़ो का विभाजन किसान भाइयों के लिए एक प्रमुख समस्या है। इस विकार से गाजर की जड़े प्राकृतिक रूप से विभाजित हो जाती है, जिससे जड़ों का आकार उचित नहीं होने से उसकी गुणवत्ता पूर्णतः प्रभावित होती है और जड़े बाजार में विक्रय के लिए अनुपयुक्त हो जाती है, जिसके कारण कृषकों को आर्थिक नुकसान होता है।

कारण :

- लम्बे समय तक सूखे के बाद भारी वर्षा गाजर में जड़ के टूटने का प्रमुख कारण है।
- गाजर की बुवाई अधिक दूरी पर करने से इसकी समस्या हो सकती है।

- लम्बे समय तक आर्द्र मौसम के बाद अचानक सूखा मौसम जड़ विभाजन के लिए अनुकूल होता है।
- अगेती किस्मों में जड़ विभाजन की समस्या पछेती किस्मों की तुलना में अधिक होती है।
- नत्रजन की पूर्ति अमोनियायुक्त उर्वरकों से करने पर भी यह समस्या हो सकती है।

प्रबंधन

- भूमि में उचित नमी बनाये रखने के लिए मौसम के आधार पर निश्चित अन्तराल से सिंचाई करें तथा उचित परिपक्व अवस्था में जड़ों की खुदाई करें।
- गाजर की बुवाई कम दूरी पर करें।
- नत्रजन की पूर्ति अमोनियायुक्त उर्वरकों की अपेक्षा अन्य उर्वरको से संतुलित मात्रा में करें।
- जड विभाजन प्रतिरोधी किस्मों अर्थात् पछेती किस्मों की खेती करें।

2. फोर्किंग : इस विकार से गाजर में द्वितीयक जड़ों की विकास होती है जिससे जड़े कांटे जैसी संरचना का रूप ले लेती है, जिसके कारण जड़ो की आकार एवं गुणवत्ता प्रभावित होती है और जड़े बाजार में विक्रय के लिए अनुपयुक्त हो जाती है। यह विकार मुख्यतः भारी मृदाओं में मिट्टी की सघनता के कारण होती है। जड़ों के विकास के दौरान मृदा में अधिक नमी होने से भी यह समस्या हो सकती है।

प्रबंधन :

- गाजर की खेती के लिए भारी एवं सघन मिट्टी का चुनाव न करें बल्कि बलुई दोमट या हल्की मिट्टी जो भुरभुरी प्रकृति की हो उस मिट्टी का चयन करें।
- जड़ों के विकास के समय अधिक नमी से बचें अर्थात् उचित नमी के लिए मौसम के आधार पर निष्चित अन्तराल से सिचांई करते रहे।

शलजम के शरीरक्रियात्मक विकार

भूरा दिल

इस शरीर क्रियात्मक विकार से शलजम की प्रभावित जड़ों के भीतरी भाग भूरे रंग के दिखाई देते है, जिसके कारण जड़ो की गुणवत्ता प्रभावित होती है।

कारण : शलजम में यह विकार मृदा में बोरान की कमी के कारण होता है। अत्यधिक अम्लीय मृदा जिसमे बोरान की कमी होती है उसमें इसकी अधिक समस्या हो सकती है।

प्रबंधन :

- अत्यधिक अम्लीय मृदा में शलजम की खेती न करें।
- बीज बुवाई के पूर्व अंतिम जुताई से पहले मिटटी में 10-15 कि.ग्रा. बोरेक्स प्रति हे. की दर से मिश्रण करें या

खड़ी फसल में 0.2 : बोरिक एसिड का छिड़काव आवश्यकतानुसार 2-3 बार करें।

- मृदा में उचित नमी बनाये रखें।

चुकन्दर के शरीरक्रियात्मक विकार

शीर्ष सड़न (Crown rot)

इस विकार से चुकन्दर की पत्तियां शीर्ष से सड़ने लगती है जिसके कारण जड़े बाद में छोटे-छोटे विकृत पत्तियों से ढ़की होती है। पुरानी पत्तियां गलने लगती है और धीरे-धीरे नेक्रोटिक धब्बे दिखाई देते है।

कारण : कृषि वैज्ञानिको के अनुसार यह विकार भी बोरान की कमी के कारण होती है।

प्रबंधन :

- अत्यधिक अम्लीय मृदा में चुकन्दर की खेती करने से बचे।
- विकार से बचने के लिए अंतिम जुताई से पहले अर्थात् बीज बुवाई के पूर्व मिट्टी में 10-15 कि. ग्रा. बोरेक्स प्रति हे. की दर से मिश्रण किया जा सकता है।
- मृदा में उचित नमी बनाये रखना चाहिए।

निष्कर्ष

सब्जियों के शरीर क्रियात्मक विकार के अध्ययन से ज्ञात होता है कि ये विकार किसी रोगजनकों के कारण नही होते हैं, अपितु प्रतिकूल परिस्थिति या पोषक तत्व की कमी या यांत्रिक चोट के कारण होते है। अतः मृदा परीक्षण के अनुसार, पोषक तत्वों की संतुलित पूर्ति, वातावर्णीय दशा के अनुरूप फसलो/किस्मो का चुनाव तथा उचित उद्यानिकी क्रियाएं करके उपरोक्त विकारो से होने वाले नुकसान से बच सकते है और प्रति इकाई क्षेत्र अधिक उत्पादन के साथ ही साथ अधिक आर्थिक लाभ अर्जित कर सकते है।

References:-

1. D.A. Sarnaik and Satish Varma 2010. Improve Cultivation of Vegetables. *Extention Bultin* IGKV, Raipur (7).
2. K.L. Bhat and Kanaya lal Bhat 2009. Physiological Disorders of Vegetable Crops *Daya publishing house* Delhi ISBN10 81-035-591-5

❖❖

नये फलोद्यान हेतु वैज्ञानिक ढंग से रेखांकन, नियोजन एवं प्रबंधन

विवेक कुमार त्रिपाठी

उद्यान विज्ञान एवं फल विज्ञान विभाग

चन्द्र शेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय,कानपुर

Corresponding Author - drvktripathicsa@gmail.com

परिचय

जिन किसान भाइयों को नया फलों का बगीचा (फलोद्यान) लगाने की इच्छा प्रबल हैं। उनके लिए बगीचा रोपड़ की तैयारी का यह सर्वोत्तम समय है। चूंकि फलोद्यान बहुत ही लम्बी अवधि के लिए होते है। इसलिए इनका नियोजन बहुत ही सावधानी पूर्वक करते है। फलोद्यान से अधिक उपज एव आमदनी प्राप्त होने के साथ-साथ वह आकर्षक लगे इसके लिए फलोद्यान की विभिन्न रोपण पद्धतियां समझना और फिर उसका प्रयोग करना बहुत जरूरी है। फलोत्पादन में तापक्रम, वर्षा, हवा, प्रकाश, वायुमण्डल में नमी, पाला एवं ओला, आदि जलवायु सम्बंधी कारकों का अपना विशेष महत्व होता है। इस कारण अपने क्षेत्र के मौसम के अनुसार फलोद्यान में फल प्रजाति का चयन करें। उष्णकटिबंधीय जलवायु में आम, अमरूद, पपीता, केला इत्यादि फल, इसी प्रकार उपोष्ण जलवायु में नीबू, अनार तथा शीतोष्ण जलवायु में सेब, नाशपाती, आड़ू इत्यादि फल सफलता पूर्वक उगाये जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त मृदा, परिवहन, बाग की सुरक्षा, सिंचाई का साधन एवं अन्य कारकों को ध्यान में रख कर नये फल वृक्षों का चयन कर आदर्श फलोद्यान लगाया जा सकता है।

फलोद्यान हेतु वैज्ञानिक ढंग से नियोजन एवं रेखांकन

नये फलों का बगीचा तभी खूबसूरत होगा जब उद्यान का वैज्ञानिक ढंग से रेखांकन, नियोजन और कुशल प्रबंधन होगा। उद्यान के अन्दर जल निकास, सिंचाई, भंडारण की सुविधाएं कम व्यय पर आसानी से उपलब्ध होना चाहिए। नये फलोद्यान की स्थापना के लिए निम्न बिंदुओं पर विशेष ध्यान देना चाहिए-

- बगीचे में विभिन्न सामग्री को ले जाने तथा बाद में उत्पादों को लाने-ले जाने के लिए सड़क मार्ग से जुड़ा स्थान नये फलोद्यान लगाने के लिए सर्वोत्तम रहता है।
- आवश्यकतानुसार सिंचाई के उचित साधन होने के साथ साथ विपरीत मौसम में जल निकास की उत्तम व्यवस्था होना जरूरी है।
- पौधों की सिंचाई तथा अन्य कृषि क्रियाएं सुगमता पूर्वक करने के लिए भूमि समतल होना चाहिए। विभिन्न औधानिक एवं कृषि क्रियाएं सुगमता पूर्वक करने के लिए खंड निर्धारित करके विभिन्न प्रकार के फल वाले पौधे लगाना चाहिए।
- लगाये जाने वाले फल पौधों का चयन मृदा के पी.एच. मान के अनुसार करना चाहिए।
- दक्षिण-पश्चिम की ओर ऊंचे (वृक्ष) पौधो तथा बाद में छोटे आकार के वृक्ष बनने वाले पौधे लगाना अच्छा रहता है।
- एक समय में पकने वाले फलों को पास-पास के खंडों में लगाना चाहिए, जिससे फलों के पकने पर उनकी तुड़ाई एवं देखभाल सही ढंग से हो सके।
- फल पौधे प्रजाति के अनुसार अनुकूल अंतर पर लगायें।
- सिंचाई नालियां ढाल के अनुसार इस प्रकार बनाएं उनसे सिंचाई के साथ-साथ जल निकास का कार्य भी संपन्न हो सके।
- फलोद्यान में प्रयुक्त सड़कें पर्याप्त चौड़ी होनी चाहिए।
- फल बगीचे के कुल क्षेत्रफल का 10 प्रतिशत से अधिक भाग सड़कों नालियों तथा भवन निर्माण आदि कार्यों प्रयोग ना हो।

फलोद्यान रोपण की विभिन्न वैज्ञानिक पद्धतियां

वर्गाकार प्रणाली: नये फलों का बगीचा लगाने में सर्वाधिक वर्गाकार प्रणाली (सरल प्रणाली) उपयोग में लायी जाती है। हेज तथा वायु वृति (विंडब्रेक) के पौधों की पंक्ति से लगभग आधी दूरी छोड़कर, रेखांकन का कार्य शुरू करना

उचित रहता है जिससे उनका प्रतिकूल प्रभाव फल वाले वृक्षों के ऊपर ना पड़े तथा उनके मध्य जुताई एवं अन्य कार्य आसानी से किये जा सके तथा चौकीदार को निगरानी रखने में भी आसानी रहे।

आयताकार प्रणाली: इस पद्धति में पौधो से पौधो की दूरी, लाइन से लाइन की दूरी से कम रहती है। इस विधि से बागवानी की सभी क्रियाएं आसानी से की जा सकती हैं तथा पौधों को उचित सूर्य का प्रकाश मिलता रहता है। इसी कारण आयताकार प्रणाली भी उत्तम मानी गयी है।

त्रिभुजाकार प्रणाली: इस प्रणाली के तहत भी पौधो वर्गाकार पद्धति की तरह ही रोपित किये जाते हैं। अंतर केवल इतना रहता है कि समान अंकों वाली कतारों के पौधे, असमान अंकों वाली कतारों के मध्य में लगाये जाते हैं। इस विधि में वृक्ष की जड़ों को वर्गाकार एवं आयताकार विधि की अपेक्षा अधिक स्थान में फैलने का मौका मिलता है, लेकिन वर्गाकार विधि की तुलना में 5 प्रतिशत पौधे कम रोपित होते हैं।

षष्ट भुजाकार प्रणाली: इस प्रणाली में षष्टभुजाकार में छः वृक्ष लगाये जाते हैं और एक अन्य वृक्ष उसके केन्द्र में लगाया जाता है। इस प्रणाली में वर्गाकार प्रणाली की अपेक्षा 15 प्रतिशत वृक्ष अधिक लगते हैं। यह विधि उन स्थानों में, जहां भूमि का मूल्य अधिक है तथा उर्वरा शक्ति उत्तम है, अधिक सफल रहती है। मध्य में लगाया गया पौधा अस्थाई होता है, जो कम समय में ही फलत देने लगता है और उसका जीवन काल भी कम समय का ही होता है।

पंचकोण प्रणाली: इस प्रणाली का रेखांकन वर्गाकार प्रणाली की तरह करते हैं। अंतर यह रहता है कि प्रत्येक वर्ग केन्द्र में एक वृक्ष अधिक लगता है, जिसे पूरक वृक्ष कहते हैं। जब वृक्ष पूर्ण आकार ग्रहण करने लगे तो पूरक वृक्ष को हटा देते हैं। मध्य भाग में जहाँ पौधा अस्थाई होता है, जो कम समय में ही फलत देने लगता है और उसका जीवन काल भी कम समय का ही होता है। इस प्रणाली में वर्गाकार विधि की तुलना में लगभग दोगुने पौधे रोहित होते हैं।

कंटूर प्रणाली: यह विधि पहाड़ में, ढालू खेतों में, ढाल के हिसाब से परि-रेखाओं मे विभाजित कर प्रयोग में लेते हैं और उसके आधार पर ढाल के विपरीत दिशाओं में पौधों को लगाते हैं।

सीढ़ीनुमा प्रणाली: इस प्रणाली के तहत सीढ़ीनुमा स्थान विकसित किया जाता है। यह कंटूर विधि से आगे का रूप है। यदि ढाल अधिक तीव्र होता है, तो सीढ़ियों की चौड़ाई कम और कम ढाल होने पर सीढ़ियों की चौड़ाई अधिक रखते है।

गड्ढों की खुदाई एवं भराई

रबी की फसल कटने के बाद, रोपड़ से एक डेढ़ माह पूर्व गड्ढे खोदने का कार्य कर लेना चाहिए ताकि खरपतवार, कीट, विषाणु आदि तेज धूप में नष्ट हो जाएं। गड्ढों की खुदाई के समय ध्यान रखें कि ऊपर की आधी मिट्टी एक तरफ तथा नीचे की आधी मिट्टी दूसरी तरफ अलग रखें। इस प्रक्रिया के बाद गड्ढों में सड़ी गोबर की खाद, बड़े वृक्षों के गड्ढों में 30-35 किग्रा. खाद व मध्यम वर्ग वालों में 25-30 किग्रा. व अन्य छोटे व कम पैदावार वाले वृक्षों में 15-20 किग्रा. खाद व गड्ढे की ऊपर वाली आधी मिट्टी एवं 0.5 किग्रा. नीम की खली दीमक बचाव के लिए प्रतिगड्ढा 15-20 सेमी. ऊपर तक भर देना चाहिए। वर्षा ऋतु में दो-तीन अच्छी बारिश के बाद अच्छी गुणवत्ता वाले एवं फलदार वृक्ष लगाना चाहिए। पौधे खरीदते समय ध्यान दें कि पौधो एक डेढ़ वर्ष पुराने ही हो ज्यादा पुराने पौधो का चुनाव नही करना चाहिए एवं पौधा रोगरहित होना चाहिए।

नये पौधारोपण में विशेष सावधानियां

पौधों को गड्ढे के बीच में रोपित करना चाहिए तथा पौधा लगाने के बाद पौधो के आस-पास की मिट्टी को खुर्पी द्वारा अच्छी तरह से दबा देना चाहिए। पौधों को बगीचे में उतनी ही गहराई तक लगाया जाए, जितना गहरा पौधा पौधाशाला में लगा हुआ था और पौधा हमेशा सीधा लगाना चाहिए। यदि पौधो का तना कमजोर है तो उसको किसी लकड़ी आज से हल्का सहारा अवश्य देना चाहिए। पौधों को हमेशा सायंकाल में ही रोपना चाहिए तथा पौधों को लगाने के समय घासपात या पुआल से लिपटे हुए हिस्से को इस प्रकार अलग करें ताकि पौधों की पिण्डी को किसी प्रकार की क्षति न हो। पौधारोपण के तुरंत बाद हल्की सिंचाई करना अति आवश्यक होता है जिससे जड़ों का, बगीचे के मिट्टी से सीधा संपर्क स्थापित हो जाता है इसके बाद पौधों की समय-समय पर निकाई एवं हल्की गुड़ाई सिंचाई के बाद करते रहना चाहिए।

रोपड़ के उपरांत फलोद्यान का वैज्ञानिक ढंग से प्रबंधन

पौधो लगाने के बाद मौसम के अनुसार रोपित पौधों की हल्की सिंचाई करते रहना अति आवश्यक है तथा ध्यान रखें कि उन पर किसी प्रकार की बीमारी तथा कीड़ों आदि का प्रकोप ना हो। यदि किसी बीमारी के लक्षण या कीड़ों मकोड़ों

विभिन्न फलों की रोपित की जाने वाली प्रजातियां

फल वृक्ष	रोपित की जाने वाली प्रजातियां
आम	बाम्बेग्रीन, चौसा, दशहरी, लंगड़ा, आम्रपाली, अम्बिका, पूसा अरूणिमा, तथा मल्लिका, आदि।
अमरूद	लखनऊ-49, इलाहाबाद सफेदा, रेड फ्लेश्ड, एपल कलर, बनारसी सुर्खा, चित्तीदार, पन्तप्रभात, मिर्जापुरी, बेदाना, ललित तथा संगम, आदि।
अंगूर	परलेट, ब्यूटीसीडलैस, थाम्पसन सीडलैस, अनाब-ए-शाही, डिलाइट, हिमराड, पन्डारी साहबी तथा भोकरी, आदि।
अनार	अलान्डी, ढोलका, जोधापुरी रेड, काबुल, पेपर सेल, गणेश, जी-137 मृदुला, ज्योति तथा रूबी, आदि।
केला	पूवन, रसथली, रोबस्टा, डवार्फ केविन्डश, मालभोग, ग्रोथ मिचेल तथा ग्रान्ड नैने, आदि।
नीबू प्रजाति	कागजीनीबू, प्रमालिनी, विक्रम, सीडलेस नीबू, पूसाउदित, ब्लडरेड, मोसम्बी, सतगुदी तथा किन्नो, आदि।
पपीता	पूसा डेलीशियस, पूसा मैजेस्टी, हनी ड्यू, सोलो, सी.ओ.-4, पन्त पपीता-2, पन्त पपीता-3, पूसा नन्हा तथा रेड लेडी, आदि।
लीची	गुलाबी, देहरारोज, लेटलार्जरेड, कलकतिया, अर्लीसीडलैस, लेटसीडलैस तथा रोज-सेन्टेड, आदि।
बेर	ब्नारसी कड़ाका, बनारसी पैबन्दी, जोगिया, पोंडा नाजुक, सानौर-1 तथा अलीगंज, आदि।
बेल	नरेन्द्रबेल 7, नरेन्द्र बेल 9, ईटावा कागजी तथा मिर्जापुरी, आदि।
आँवला	बनारसी, कृष्णा, एन. ए.-9,ए न. ए.-10, कंचन, चकैया, बलवन्त आँवला तथा लक्ष्मी-52, आदि।

का आक्रमण दिखाई पड़े, तो तुरंत ही उचित सुनियोजित रसायन या कवकनाशी का प्रयोग करके उनको नियंत्रित करना चाहिए।

जुलाई-अगस्त में पौध रोपण करने के कुछ माह बाद ही शरद ऋतु आ जाती है। उस समय इन नए रोपित पौधों को मौसम के विपरीत प्रभाव से बचाना अति आवश्यक होता है। इसके लिए पौधों के आसपास तीन लकड़ियां लगाकर उस पर टाट इस प्रकार से लगाते हैं कि पूर्व की दिशा खुली रहे और अन्य दिशाओं से हवा ना आने पाए।

पौधों के पास चार लकड़ियां लगाकर, पौधे की ऊंचाई से 25 से 30 सेंटीमीटर ऊपर घास फूस या पुआल रखकर भी पौधो को बचाया जा सकता है। बगीचे में घर पहुंचकर कर कर कर रात्रि के समय हल्का धुआं करने से भी वातावरण के तापमान को बढ़ाकर पौधों को विपरीत मौसम से बचाया जा सकता है।

नए बागों में अंत:सस्यन

जो बगीचा आप रोपित कर रहे हैं उससे प्रारंभ के कुछ(दो-तीन) वर्षों तक कोई भी आय प्राप्त नहीं होती है, इसलिए इस समय में पौधों के बीच में पड़ी बेकार एवं खाली

बगीचे में विभिन्न फलपौधों का रोपण अंतराल

फल वृक्ष	पौधे से पौधे की दूरी
अमरूद	6 × 6
अंगूर	3 × 3
अनार	6 × 6
आम	10 × 10, 2.5 × 2.5
केला	1.8 × 1.8
नीबू प्रजाति	6 × 6
पपीता	2.0 × 2.0
लीची	10 × 10
बेर	6 × 6
बेल	8 × 8
आँवला	10 × 10

जगह में दलहनी फसलों में उर्द, चना, मूंग, एवं लोबिया, सब्जियो में टमाटर, बैंगन, मिर्च, फूलगोभी, पातगोभी या कद्दूकुल की सब्जियां, फूल वाले पौधों में गेंदा, गैलार्डिया, ग्लेडियोलस, आदि तथा फल वाले पौधों में पपीता, फालसा, रसभरी या स्ट्रॉबेरी को उगाकर अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है और इनसे खरपतवार भी नियंत्रित रहते हैं। ध्यान यह रखना चाहिए कि अंतःसस्यन के रूप में उगाई जाने वाली फसल, मुख्य फसल पर लगने वाले कीड़ों मकोड़ों एवं बीमारियों को आश्रय ना देती हो तथा उनकी जल की मांग भी मुख्य फसल की भांति ही हो। इस प्रकार अंतःसस्यन में उगाई गई फसल को अलग से संस्तुत मात्रा में खाद एवं उर्वरक भी देना आवश्यक होता है।

निष्कर्ष

इस प्रकार से उचित ढंग से नियोजन करके, समय वैज्ञानिक ढंग से रेखांकन तथा रोपण करके और उसके बाद उचित प्रबंधन कर के बगीचे से भविष्य में अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है।

❖❖

आलू की पछेता झुलसा बीमारी एवं उसका एकीकृत रोग प्रबंधन

नरेन्द्र कुमार[1*], गोविन्द विश्वकर्मा[2] एवं सोनू कुमार[3]

[1]कृषि विज्ञान विभाग,डॉल्फिन (पी. जी.) इंस्टिट्यूट ऑव मेडिकल एण्ड नेचुरल साईंसिज, देहरादून

[2]उद्यान विज्ञान विभाग, रानी लक्ष्मी बाई केंद्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झांसी

[3]फ्लोरीकल्चर एवं लैण्डस्केप विभाग, महाराणा प्रताप होर्टिकल्चरल विश्वविद्यालय, करनाल

Corresponding Author - narenderp.path@gmail.com

परिचय

आलू विश्व की चार मुख्य खाद्य फ़सलो (चावल, गेंहू, मक्का, आलू) मे से एक है। आलू सोलनम (*Solanum*) वंश का पौधा है, जो सोलनेसी परिवार (Solanaceae family) के अन्तर्गत आता है। इस सोलनम वंश के अन्तर्गत लगभग 2000 प्रजातियां आती है लेकिन कृषण दो ही प्रजातियों (*सोलनम एण्डीजिनम व सोलनम ट्यूबरोसम*) का होता है। *सोलनम एण्डीजिनम* का प्रचलन विश्व मे कोई ज्यादा नही है। विश्व में मुख्य रुप से *सोलनम ट्यूबरोसम* की ही खेती की जाती है। क्षेत्रफ़ल की दृष्टि से आलू उत्पादन में चीन विश्व मे प्रथम स्थान रखता है। चीन के बाद क्रमशः रुस, यूक्रेन व पोलैण्ड का स्थान आता है। भारत आलू उत्पादन के क्षेत्रफ़ल मे विश्व में पाँचवा स्थान रखता है।

आलू सबसे आम और महत्वपूर्ण भोजन स्रोतों में एक है। भारत के हर रसोईघर में आलू के बिना कोई भी व्यंजन बनाना मुश्किल होता है।

आलू हिन्दी का शब्द है। आलू के भिन्न भिन्न भाषाओ मे भिन्न भिन्न नाम है जैसे आलू (हिन्दी, बंगाली, नेपाली), आलू गिड्डे (कन्नड), बटाटा (गुजराती, मराठी, अरबी) उरालाकीलंगू, वल्लाराईकीलंगू (तमिल), बंगलाडंपा, उरलागड्डा (तेलगु); उरुलैकीलन्नू (मलयालम) आदि।

आयरलैण्ड की भूखमरी (Irish Famine)

आलू की पछेती अंगमारी बीमारी के कारण आयरलैण्ड में 1843-45 की अवधि में भयंकर अकाल पड़ा था। उस समय आयरलैण्ड व यूरोप के बहुत से देशों में आलू एक प्रमुख आहार होता था। आलू के पछेती अंगमारी के कारण आयरलैण्ड में आलू की सम्पूर्ण फसल नष्ट हो गयी थी। अकाल ने पूरे यूरोप को अपनी चपेट में ले लिया था। लगभग दस लाख लोग भूखमरी के कारण मर गये व इससे भी ज्यादा लोगों (लगभग पन्द्रह लाख) ने आयरलैण्ड को छोड़कर यूरोप के अन्य देशों जैसे अमेरिका, कनाडा आदिमें शरण ली थीं। अकाल की शुरूआत तो प्राकृतिक महाविनाश के रूप में हुयी थी लेकिन लॉर्ड जोहन रसेल की सरकार ने इसे संकटकालीन समय को अपने कुप्रबन्धन से हालातों को बद से बदतर बना दिया था। नोबेल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन ने ठीक ही कहा है कि लगभग सभी अकालों को रोका जा सकता है, यदि सरकार इसे रोकने की इच्छा शक्ति रखती है।

आलू की गिनती एक स्वादिष्ट और पौष्टिक खाद्य पदार्थ में की जाती है। यह न सिर्फ पेट भरने करने का काम करता है, बल्कि इसमें मौजूद औषधीय गुण शारीरिक तकलीफों को दूर करने का काम भी कर सकते हैं। यह फाइबर और पोटैशियम से भरपूर होता है।

अगेती अंगमारी, पछेती अंगमारी, ब्लैक स्कर्फ़, जीवाण्विक सड़न, वर्ट व मोजैक आदि आलू की मुख्य बीमारियां है। अगेती व पछेती अंगमारियां, ब्लैक स्कर्फ़ व वर्ट बीमारियां कवको द्वारा उत्पन्न की जाती है। जीवाण्विक सड़न बीमारी जीवाणु (bacteria) द्वारा उत्पन्न की जाती है जबकि मोजैक एक विषाणु जनित बीमारी है।

पछेती अंगमारी रोग विश्व के आलू उगाये जाने वाले सभी क्षेत्रो मे लगता है। इस बीमारी पर वैज्ञानिको का ध्यान सर्वप्रथम उस समय गया जब 1843-45 मे आयरलैण्ड मे ये रोग भूखमरी का कारण बना। भारत मे सर्वप्रथम इस बीमारी को नीलगिरी की पहाड़ियों पर देखा गया। विश्व मे उत्तरी यूनाइटेड स्टेट, कनाडा का पूर्वी समुद्र तट, पश्चिमी यूरोप, मध्य व दक्षिणी चीन व दक्षिणी-पूर्वी ब्राज़ील आदि क्षेत्र पछेती अंगमारी रोग के लिये उच्च रोग सघनता (intensity) क्षेत्र की श्रेणी मे आते है। ये रोग पौधे मे उसके जीवनकाल (बुवाई से लेकर खुदायी के बीच) की किसी भी अवस्था मे हो सकता है। यदि रोग के रोगजनक को अनुकूल जलवायु मिल जाये तो यह फ़सल को शत-प्रतिशत बर्बाद कर सकता है।

रोग लक्षण (Symptoms)

पर्णिय रोग लक्षण (Foliar Symptoms)

जनवरी माह मे रोग लक्षण दिखायी पड़ने लगते है। सर्वप्रथम रोग लक्षण जलिय धब्बो के रुप मे निचली पत्तियों के किनारो पर दिखायी पडते है। ये जलिय धब्बे तेजी से अनियमित आकार में बढ़ते है व भूरा रंग धारण कर लेते है। ये छोटे छोटे धब्बे आपस मे मिलकर पूरी पत्ती को झुलसा देते है, जिससे पत्ती शिथिल पड़ जाती है। रोग की तीव्रता बढ़ने पर रोग लक्षण पौधे के सभी वायवीय भागो मे फ़ैल जाते है व खेत के सभी पौधे झुलसकर एक या कुछ सप्ताह के अन्दर मर जाते है।

कन्द रोग लक्षण (Tuberous Symptoms) :

रोग की तीव्रता बढ़ जाने पर आलू के कन्द भी प्रभावित हो जाते है। सर्वप्रथम कन्दो पर बैंगनी या भूरे रंग के जलिय

रोग पूर्वानुमान (Disease Forecasting)

रोग परपोषी, रोगजनक व पर्यावरण की परस्पर अन्तः क्रियाओ (Interactions) का परिणाम होता है। यदि हम उपरोक्त तीनो की कार्यप्रणाली को जान ले तो रोगो का पूर्वानुमान आसानी से कर सकते है। रोग विकास के लिये सर्वप्रथम परपोषी का रोगग्राही होना जरुरी है। इसके साथ ही रोगजनक उच्च जनन दर निम्न मृत्यु दर होने के साथ साथ पर्यावरणीय कारक (मौसम व जलवायु) रोगजनक वृद्धि व विकास के अनुकूल होने चाहिये। कुछ विकसित व विकासशील देशो मे रोग पूर्वानुमान की सेवा (Disease Forecasting Service) उपलब्ध है, जो कईं वर्षो के परपोषी, रोगजनक एवं पर्यावरण की परस्पर क्रियाओ पर निरन्तर किये गये अनुसंधान व निरीक्षणो पर आधारित होती है। आलू की पछेती अंगमारी बीमारी के लिये सबसे आरम्भिक पूर्वानुमान विधि 'डच नियम' है जिसका आधार रोगजनक-पर्यावरण आन्तर-क्रिया है। डच नियम के आधार पर हॉलैण्ड मे रोग के लिये सटिक पूर्वानुमान किये गये, लेकिन सभी जगह न तो मौसम और न ही प्रारम्भिक निवेशद्रव्य एक समान होते है। अतः डच नियम एक विशेष क्षेत्र के अनुरुप परिवर्तन के उपरान्त ही सटिक पूर्वानुमान मे सहायक सिद्ध हो पाते है। ब्लाइटकास्ट (BLITECAST) एक कम्प्यूटर प्रोग्राम है जो वर्षा, तापमान एवं आपेक्षित आर्द्रता पर आधारित आलू व टमाटर के पछेते झूलसा का पूर्वानुमान लगाता है। टमाटर व आलू दोनो एक ही कुल के पौधे है व दोनो मे पछेती अंगमारी रोग के लिये फ़ाईटोफ़्थोरा इनफ़ेसटांस नाम का कवक जिम्मेदार है। अतं दोनो फ़सलो की पछेती अंगमारी के लिये एक ही विधि से पूर्वानुमान लगाया जाता है।

छाले बन जाते है जो बाद मे 5-15 मि.मी. के लाल-भूरे रंग के छालो मे बदल जाते है। बाद मे प्रभावित भाग सूख जाता है, जो स्थायी होकर पिचक जाता है।

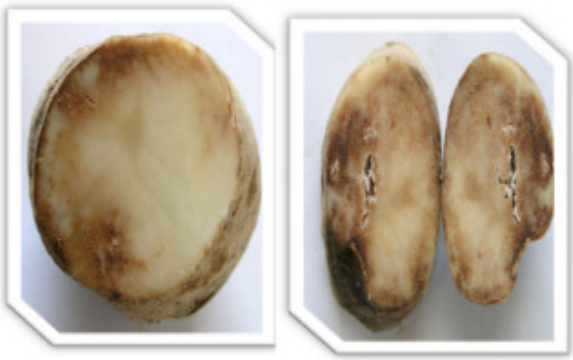

रोगजनक (Pathogen)

फ़ाईटोफ़्थोरा इनफ़ेसटांस का वर्गीकरण

जगत	क्रोमिस्टा
संघ	ऊमाइकोटा
कक्षा	ऊमाइसिटस
गण	पिथियेल्स
परिवार	पिथियेसी
वंश	*फाईटोफ्थोरा*
प्रजाति	*इन्फेसटांस*

आलू मे झुलसा रोग फ़ाईटोफ़्थोरा इनफ़ेसटांस नाम के कवक से होता है जो ऊमाइकोटा (oomycota) संघ का सदस्य है। ऊमाइकोटा संघ के सदस्यो की कोशिका भित्ति मे सेल्युलोज पाया जाता है। सेल्युलोज की उपस्थिति इस संघ के सदस्यो को मुख्य कवको (true fungi) से अलग करती है क्योंकि सामान्यतः कवको की कोशिका भित्ति मे काइटिन पाया जाता है। इसके सदस्य अपने जीवन का एक बहुत बडा हिस्सा द्विगुणित अवस्था मे गुजारते है। *फ़ाईटोफ़्थोरा* स्टेरॉल व थायमिन का संश्लेषण नही कर पाता है।. *फ़ाईटोफ़्थोरा इनफ़ेसटांस* एक बायोट्रोफ़ प्रकार का रोगजनक है लेकिन इसको कृत्रिम कल्चर मीडिया पर भी उगाया जा सकता है। बायोट्रोफ़ ऐसे सूक्ष्मजीवो को कहते है जो अपना जीवन व जनन दूसरे जीवो पर ही परजीवी के रुप मे पूरा करते है। *फ़ाईटोफ़्थोरा* वंश के अन्तर्गत 60 से भी अधिक प्रजातियां आती है जो मुख्य रुप से विभिन्न प्रकर के पौधो के ऊपर परजीवी होते है।

उत्प्रेरित प्रतिरोधकता (Induced Resistance)

ये एक आम धारणा है कि पौधे स्वयं भी रोगजनकों के प्रति प्रतिरोधकता प्रदर्शित करते हैं लेकिन उग्र या अनुग्र प्रकृति के रोजजनक या अजैविक उत्पत्ति वाले कुछ यौगिकों के कारण प्रभावित पौधे उत्प्रेरित प्रतिरोधकता प्रदर्शित करते हैं। उत्प्रेरित प्रतिरोधकता मुख्य रूप से दो प्रकार की हाती हैं-1. सर्वांगी उपार्जित प्रतिरोधकता, 2. उत्प्रेरित सर्वांगी प्रतिरोधकता। मूलर व बॉर्गर द्वारा आलू में फ़ाईओफ्थोरा इनफ़ेसटांस की अनुग्र (avirulent) रेस का निवेश कर कन्द में उत्पन्न हुयी प्रतिरक्षा (Immunity) का सफल प्रदर्शन किया गया। अनुग्र रेस के निवेश कर कन्द उग्र (virulent) रेस के प्रति प्रतिरक्षी हो जाते हैं। मूलर व बॉर्गर ने ही फ़ाइटोएलेक्सिन शब्द को प्रस्तावित किया था। उनके अनुसार, "फ़ाइटोएलेक्सिन्स ऐसे यौगिक होते हैं जो आलू में पछेती अंगमारी रोगजनक की अनुग्र रेस का निवेश करने पर पौधे में बनते हैं और जो पछेती अंगमारी के उग्र रोग जनक की वृद्धि को रोक (inhibit) देते हैं।" अब ये एक सर्वमान्य मत हैं कि फ़ाइटोएलेक्सिन्स का संश्लेषण सभी पौधो में होता है। पौधों में फाइटोएलेक्सिन की अवधारणा स्तनपायो (mammals) की 'प्रतिरक्षी प्रतिक्रिया' के समकक्ष है। फ़ाइटोएलेक्सिन्स निम्न आण्विक भार वाले प्रतिसूक्ष्मजैविक यौगिक होते हैं जिनका संश्लेषण व प्रकरण पौधों में सामान्यतः सूक्ष्मजीवो के आघात के बाद होता है। फ़ाइटोएलेक्सिन्स प्रतिजैविक की भाँति कार्य करते हैं। फ़ाइटोएलेक्सिन्स फ़िनोल आइसोप्रेनॉइट्स व एसिटिलिन्स जैसे यौगिकों का एक समूह है। प्रत्येक पौधे परिवार द्वारा निकट सम्बन्धी वर्ग के फ़ाइटोएलेक्सिन्स का ही उत्पादन किया जाता है। फ़ाइटोएलेक्सिन्स का संश्लेषण रोगजनकों के अलावा अजैविक उत्पत्ति वाले स्ट्रेस यौगिक जैसे हैवी मेटल लवण, कोल्ड व पराबेंगनी तरंगों द्वारा भी प्रेरित होता है। सर्वप्रथम रिशिटिन नाम के फ़ाइटोएलेक्सिन को रिशिर किस्म आलू कन्द से उच्च मात्रा (100mg/1g ताजा ऊतक) में एकत्रित किया गया था। रिशिटन पछेती अंगमारी रोगजनक के प्रति आलू के कन्द में प्रतिरोधकता उत्पन्न करने वाला एक मुख्य अवयव है।

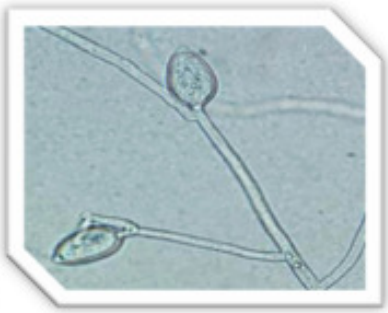

फ़लस्वरुप अण्डधानी का विकास निषिक्ताण्ड (oospore) मे हो जाता है। ये निषिक्ताण्ड प्रतिकूल मौसम मे मृदा मेपड़ा रहता है। अनुकूल मौसम मिलने पर निषिक्ताण्ड से जनन नलिका द्वारा बीजाणुधानी का विकास होता है, जो चलबीजाणु बनाकर अंकुरण करती है।

बीजाणुधानिया (sporangia)

ऐसे सूक्ष्मजीवो कवकजाल अन्तःपादपी (endophytic) होता है, जिसके कवकतन्तु अत्यधिक शाखित, पट्टहीन, 4µm-8µm व्यास वाले अन्तराकोशिकीय (intercellular) प्रकार के होते है। परपोषी की कोशिकाओ के बीच के क्षेत्र (अन्तराकोशिकीयक्षेत्र) मे अनुकूलन करने वाले कवक या उसके तन्तुओ को अन्तरा कोशिकीय कहते है।कवक परपोषी कोशिकाओ से भोजन का अवशोषण विशेष प्रकार की रचना के माध्यम से करते है, जिसे चूषकांग (haustoria) कहा जाता है।

विशेष प्रकार के कवक तन्तु जिन पर बीजाणुधानियो (sporangia) का विकास होता है बीजाणुधानीधर (sporangiophores) कहलाते है। प्रत्येक बीजाणुधानी मे 12°-15°C तापक्रम पर सामान्यतः 3-8 द्विवकशाभिक चलबीजाणुओ (biflagilated zoospores) का विकास होता है। लेकिन अलैंगिक जनन की इस प्रक्रिया मे जब तापमान 15°C से अधिक हो जाता है तब बीजाणुधानी कोनिडिया की भांति व्यवहार करती है, जो सीधे ही एक जनन नलिका बनाकर अंकुरित हो जाती है।

लैंगिक जनन हेतू संक्रमित पौधे मे रोगजनक के दो भिन्न प्रकार के प्रभेदो की उपस्थिति अनिवार्य है। जिनमे से एक प्रभेद मादा तन्तु की भांति व दूसरा नर तन्तु की भांति व्यवहार करता है। नर तन्तु पर गदाकार पुंधानी (antheridium) व मादा तन्तु पर गोलाकार अण्डधानी (oogonium) का विकास होता है। अण्डधानी का निषेचन पुंधानी द्वारा हो जाने के

रोग चक्र (Disease Cycle)

रोग चक्र का संबन्ध रोगजनक के जीवन अर्थात् पौधे के एक जीवन चक्र मे रोगजनक द्वारा किये गये गुणन से है। *फ़ाईटोफ़्थोरा इनफ़ेसटांस* के लैंगिक व अलैंगिक दोनो प्रकार से गुणन (जनन) करता है। अलैंगिक जनन मे स्पोरेंजिया का निर्माण होता है, जिनसे अनुकूल अवस्था (<16°C) मे चलबीजाणु मुक्त होते है। ये चलबीजाणु कुछ समय की सुषुप्त अवस्था के बाद अंकुरित होकर या तो सीधे एपिड्रमल कोशिकाओ को भेदकर या स्टोमेटा के माध्यम से पौधे मे घुस जाते है। कन्द मे चलबीजाणु घाव, लेन्टिसेल या कलिका के माध्यम से प्रवेश करते है।

फ़ाईटोफ़्थोरा इनफ़ेसटांस के मुख्य रुप से दो विभेद (A_1 व A_2) होते है। जब ये दोनो विभेद आलू को संक्रमित करते है तब ऊगोनियम (मादा जनन संरचना, n) व एंथेरिडियम (नर जनन संरचना,n) के निषेचन से द्विवगुणित ऊस्पोर (2n) बनता है जो भूमि मे रहकर प्रतिकूल मौसम से अपने आप को बचाता है।

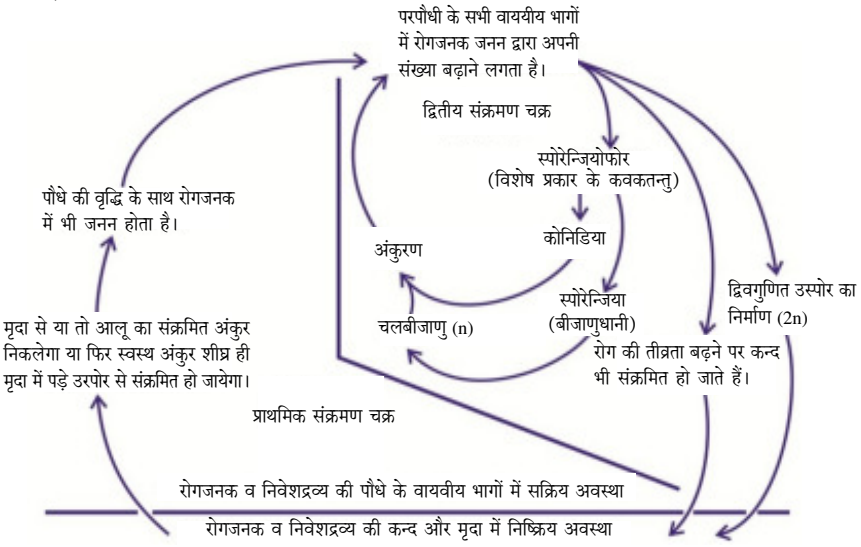

रोग प्रबन्धन (Diseases Management)

खेत का चयन (Selection of field)

अच्छे जल निकास वाली मृदा जिसमे पर्याप्त मात्रा मे कार्बनिक अंश मौजूद हो, आलू की खेती के लिये उपयुक्त रहती है। ऐसे खेत का चुनाव आलू की खेती के लिये नही करना चाहिये जिसमे गतवर्ष मे आलू की फ़सल पछेती अंगमारी से प्रभावित हुयी हो।

ग्रीष्मकालीन जुताई (Summer ploughing)

खेत की ग्रीष्मकालीन गहरी जुताई कर कड़ी धूप मे खुला छोड़ देने पर मृदा जनित रोग जनको के निवेशद्रव्य मे पर्याप्त कमी हो जाती है।

बीज का चुनाव (Selection of Seed)

किसी अधिकारिक स्रोत से ही प्रमाणित व प्रतिरोधी किस्मो के बीज खरीदने चाहिये। कुछ प्रतिरोधी किस्मे इस प्रकार है-कुफ़री नवीन, कुफ़री जीवन, कुफ़री अलंकार, कुफ़री मोति, कुफ़री बादशाह, कुफ़री स्वर्ण, जे एच 232, एफ़ 5242, ए बी 286 इत्यादि।

बीज का उपचार (Seed Treatment)

मेटालेक्सिल या अन्य किसी सर्वांगी कवकनाशी से कन्दो को उपचारित करके ही बोना चाहिये।

बुवाई का समय (Sowing Time)

संस्तुत समय पर ही आलू की बुवाई करे। संस्तुत समय से अगेती या पछेती बुवाई करने से बचना चाहिये।

पादप अन्तरालन (Plant Spacing)

आलू की बुवाई संस्तुत (recommend) बीज की मात्रा व अन्तराल (spacing) को ध्यान मे रखते हुये करनी चाहिये। पौधो के बीच उचित अन्तराल न होने के कारण आर्द्रता बढ जाती है, तापमान कम हो जाता है व साथ साथ वातन एवं प्रकाश की भी कमी हो जाती है।

इस तरह की अवस्थाये उत्पन्न हो जाने पर आलू का पछेता अंगमारी रोग अत्यधिक तीव्रता से फ़ैलता है।

फ़सल पोषण (Crop Nutrition)

फसल पोषण के पोषक तत्वो की संस्तुत मात्रा का ही प्रयोग करना चाहिये। आलू मे नाइट्रोजन के अधिक प्रयोग से पौधे पछेती अंगमारी रोग प्रति सुग्राही (suceptible) हो जाते है।

खरपतवार नियंत्रण (Weed Management)

पछेती आलू के खेत मे से या उसके आस पास से भी सोलनेसी परिवार के खरपतवारो को हटाकर नष्ट कर देना चाहिये। सोलनेसी परिवार के अन्य पौधे जैसे मकोय (*Solanum nigrum*), धतूरा (*Datura stramonium*), जंगली रसभरी (*Physalis peruviana*) आदि *फ़ाईटोफ़्थोरा इनफ़ेसटांस* के लिये समान्तर परपोषी (*Collateral hosts*) का कार्य करते है।

रासायनिक प्रबन्धन (Chemical Management)

रिडोमिल एम जेड-72 का 0.25 प्रतिशत की दर से दो पर्णिय छिड़काव करने चाहिये। प्रथम छिड़काव फ़सल पर प्रथम रोग लक्षण दिखायी पडने पर करना चाहिये एवं दूसरा छिड़काव प्रथम छिड़काव के 15 दिनो के अन्तराल पर करना चाहिये। रिडोमिल एम जेड-72 मेटालेक्सिल (8%) व मैंकोजेब (64%) का मिश्रण होता है।

निष्कर्ष

भारतीय रसोइयों मे आलू के व्यंजनो की विविधता इसके महत्व को दर्शाती है। एक वर्ष मे आलू की दो फसल आसानी से ली जा सकती है। पोष्णिक मूल्य व सर्वसुलभता ने आलू को सब्जियो का राजा बना दिया है। आलू की अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिये कृषि क्रियाओ व नाशीजीव प्रबंधन हेतु वैज्ञानिक पद्धतियो का प्रयोग करना चाहिये। फसल उत्पादन से सम्बन्धित किसी भी समस्या के समाधान के लिये विशेषज्ञो की सलाह लेनी चाहिये। इसके लिये किसान को अपने नजदीकी कृषि विज्ञान केन्द्र या उच्च शिक्षण संस्थान के सम्बन्धित विशेषज्ञ से सम्पर्क करना चाहिये।

❖❖

सम्भावनाओं से भरा एक उभरता फल- लांगन

विशाल नाथ[1*], इवनिंग स्टोन मार्बोह[2] एवं स्वप्निल पाण्डेय[3]

[1,2,3]भाकृअनुप- राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर

Corresponding Author - vishalnath1966@gmail.com

परिचय

फल वृक्षों के सापिण्डेयसी परिवार में उत्पन्न लीची के साथ कुछ हद तक रम्ब्रूटान का फल भारतीयों के मन मस्तिष्क पर अपनी पहचान बनाने में सफल रहा है परन्तु इसी कुल का एक अन्य फल 'लांगन' अथवा लौंगन जिसे वानस्पतिक भाषा में *डेमोकारपस लांगन* के नाम से जाना जाता है, शायद ही किसी ने सुना व देखा हो अथवा स्वाद चखा हो। है न हैरत की बात!

दरअसल लांगन का फल इतना छोटा होता है और भारत में इसके पौधे इतने सीमित हैं, कि कभी इस तरफ वैज्ञानिकों का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ। पिछले लगभग दो दशकों से या यूँ कहें कि देश में लीची पर शोध करने वाले एक मात्र संस्थान भाकृअनुप- राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर की स्थापना के बाद वैज्ञानिकों ने इस फसल पर भी शोध कार्य प्रारम्भ किया और कुछ जननद्रव्यों का संग्रहण और मूल्यांकन करके उदीयमान जननद्रव्यों का एक मजबूत आनुवंशिक आधार स्थापित किया है। जिसके फलस्वरूप एक किस्म 'गण्डकी उदय' का भी विकास किया गया और लगभग 12-15 ऐसे आनुवांशिक द्रव्यों का चयन किया है, जिनके फल बड़े, गूदा अधिक, बीज छोटे तथा दैहिक एवं अन्य प्रकोपों से रहित और उच्च उत्पादन क्षमता रखते हैं।

लांगन के फल में गूदा (एरिल) मीठा एवं खाने योग्य होता है, जो अनेक पोषक तत्वों से भरपूर होता है। इसमें सोडियम तथा कोलेस्ट्रॉल बहुत कम और राबोफ्लेविन, पोटैशियम पोटैशियम, कॉपर तथा विटामिन 'सी' अधिक होता है। ताजे लांगन के 100 ग्राम गूदे में 109 कैलोरी ऊर्जा के साथ-साथ अच्छी मात्रा में रेशा, थाइमीन, ओमेगा-6 मौजूद होता है तथा शरीर में प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने और कैंसर जैसे रोग से लड़ने के लिए आवश्यक तत्वों का भण्डार होता है। लांगन के 100 ग्राम ताजे गूदे में निम्नलिखित तत्व पाये जाते हैं–

ऊर्जा	- 109 कैलोरी
कार्बोहाइड्रेट	- 25.2 ग्राम
प्रोटीन	- 1.0 ग्राम
कोलेस्ट्राल कोलेस्ट्रॉल	- 0.0 मिग्रा
खाद्य रेशा	- 0.4 ग्राम
विटामिन 'सी'	- 8.0 मि. ग्रा.
नियासिन	- 0.6 मि. ग्रा.
राइवोफ्लेबिन	- 0.07 मि.ग्रा.
थायमीन	- 0.04 मि.ग्रा.
विटामिन 'ए'	- 28.0 आईयू.
लौह तत्व	- 0.3 मि.ग्रा.
फास्फोरस	- 6.0 मि.ग्रा.

स्रोतः वांग और सैकोल (1991)

लांगन के औषधिय गुण

लांगन के फल अनेक पोषक तत्वों और औषधीय गुणों से ओत-प्रोत हैं जिनका विवरण नीचे दिया जा रहा है।

- लांगन के 100 ग्राम खाने योग्य भाग में 109 किलो कैलोरी ऊर्जा तो होती ही है, साथ ही साथ इसमें कोई संतृप्त वसा या कोलेस्ट्रॉल भी नहीं होता है।
- इसमें अच्छी मात्रा में खाद्य रेशा, विटामिन तथा एन्टीऑक्सीडेन्ट होने के कारण यह शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है।

- लांगन के छिलके और बीज में बड़ी मात्रा में पालीफिनॉल पाये जाते हैं।
- उष्ण कटिबन्धीय अन्य फलों की तुलना में लांगन के छिलके में सबसे अधिक फ्लैवोनायड (213.45 मिग्र.क्वेरसेटिन्स प्रति ग्राम सूखे छिलके) पाया जाता है।
- इसका फल रसदार एवं तरोताजा रखने वाला होता है, जिसमें फ्रक्टोज और सुक्रोज की मौजूदगी के कारण इलेक्ट्रोलाइट, खनिज तत्व और विटामिन का अच्छा संतुलन रहता है।
- लांगन फल में शरीर के ऊत्तकों के मरम्मत व प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने वाला विटामिन 'सी' प्राकृतिक रूप से मौजूद रहता है, जो हमारी प्रतिदिन की विटामिन 'सी' की आवश्यकता का 13 प्रतिशत तक पूर्ण करता है।
- ऑक्सीजन आधारित मुक्त रेडिकल को कम करके यह शरीर को रोग मुक्त एवं लौह तत्व के अवशोषण से मसूड़ों के रक्त स्राव को नियंत्रित करता है।
- खाद्य रेशा की उपस्थिति के कारण लांगन के सेवन से शरीर का वजन और कोलेस्ट्रॉल की मात्रा नियंत्रित रहती है।
- लांगन में मौजूद विटामिन 'बी' काम्पलेक्स शरीर शरीर के अन्दर कार्बोहाइड्रेट के उपापचय प्रक्रिया में सहायक होता है।
- लांगन फल में खनिज तत्व की मौजूदगी के कारण से शरीर की मज्जा प्रवाह नियंत्रित रहती है, जो दिल की धड़कन और रक्तचाप को नियंत्रित करती है।
- चीन की परम्परागत औषधि (TCM) में लांगन को 'यिन खाद्य' के रूप में मान्यता दी गयी है, जो रक्त शुद्ध करके हृदय और प्लीहा के कार्य प्रणाली को बढ़ाता है।
- लांगन के सेवन से मानसिक तनाव कम, याददाश्त अधिक तथा सुस्तपन कम होता है, जो प्रायः तनाव या अधिक कार्य दबाव के कारण होता है।

कैसे करें लांगन की खेती

लांगन का पौधा एक वृक्ष की तरह होता है जो सामान्य दशा में 5-7 मीटर तक ऊँचाई और 8-9 मीटर तक क्षत्रक व्यास वाला होता है। इसीलिए लांगन की व्यवसायिक खेती के लिए 10 x 10 मीटर अथवा 9 x 9 मीटर पर वर्गाकार विधि से पौध रोपण किया जाता है। भाकृअनुप- राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र ने लांगन के पौधों को 8 x 8 मीटर की दूरी पर वर्गाकार विधि में तथा 10 x 5 मीटर की दूरी पर आयताकार या हेजरो विधि में पौध रोपण करके इसके उत्पादन में सफलता प्राप्त की है। अतः किसानों को लांगन के पौधों को वर्गाकार विधि में 8 x 8 मीटर के अन्तराल और आयताकार विधि में 10 x 5 मीटर के अन्तराल पर बाग स्थापित करने का की सलाह दी जाती है ।

गड्ढे की तैयारी एवं पौध रोपण

लांगन का पौधा लगाने के लिए लीची के जैसे ही 90 x 90 x 90 सेमी. आकार के गड्ढे मई-जून में खोदे जाते हैं। इन गड्ढों की ऊपरी आधी मिट्टी को खोदते समय एक तरफ रख दिया जाता है। उसमें 10-15 किग्रा. गोबर की सड़ी खाद, 1 किग्रा. नीम/करंज की खली, 2 किग्रा. वर्मीकम्पोस्ट तथा 50 ग्रा. क्लोरपायरीफास धूल (10 प्रतिशत) मिलाकर जून-जुलाई में रोपाई के लगभग 15 दिन पहले अच्छी तरह से भर दिया जाता है। एक बरसात के बाद जब गड्ढे की मिट्टी ठीक से बैठ जाय तब गड्ढे के मध्य पौध रोपण किया जाता है। पौधा लगाने के तुरन्त बाद उसके चारो ओर छोटा सा थाला बनाकर 2-3 लीटर पानी डाल दिया जाता है, जिससे पौधों में होने वाले रोपण सदमों से पौधे सूखते नहीं और यदि बरसात न हो रही हो, तो सप्ताह या 15 दिनों पर पौधे की सिंचाई करते रहें। यद्यपि लांगन का पौधा काफी कठोर होता है, परन्तु पौधा लगाने के एक वर्ष तक विशेष ध्यान की आवश्यकता होती है। उसमें समय -समय पर थालों की सफाई, गुड़ाई, सिंचाई, कीट-व्याधि से बचाव करते रहने पर पौधा अच्छा विकास करता है और बागीचा समान रूप से स्थापित हो जाता है।

ढ़ांचा निर्माण एवं क्षत्रक विकास

पौध स्थापना के एक वर्ष बाद लांगन के पौधों में ढांचा निर्माण करने से पौधे के लिए आवंटित स्थान के अन्दर पौधों

की मुख्य शाखाओ, द्वितीयक शाखाओ और अन्य डालियों का निर्माण करके पौधे का एक मजबूत आधार बनाया जा सकता है। लांगन का पौधा ऊँचाई में बढ़ने वाला होता है और शाखाएं भी बहुत निकलती हैं। अतः शाखा कोणों को चौड़ाई देने तथा पौधे के क्षैतिज विकास को बढ़ावा देने के लिए शीर्ष प्रभाव को कम करने या रूपान्तरित करने की आवश्यकता होती है। जिसके लिए सीधा ऊपर की ओर बढ़ने वाली मुख्य अक्षीय तने पर जमीन से 70-80 सेमी. की ऊँचाई पर पार्श्व शाखाओं को बढ़ावा दिया जाता है। यदि प्राकृतिक रूप से ऐसी शाखाएं न हो तो शीर्ष मुण्डन (Heading back) या शीर्ष कृन्तन (Apical running) द्वारा पार्श्व शीर्ष शाखाओ को विकसित कर सकते हैं। शीर्ष कृन्तन की ऊँचाई 80-90 सेमी. होनी चाहिए, जिससे बगल से निकलने वाली शाखाओ को चारों दिशाओं (वर्गाकार विधि) में या दो दिशाओ (आयताकार विधि) में बढ़ाने में मदद मिल सके।

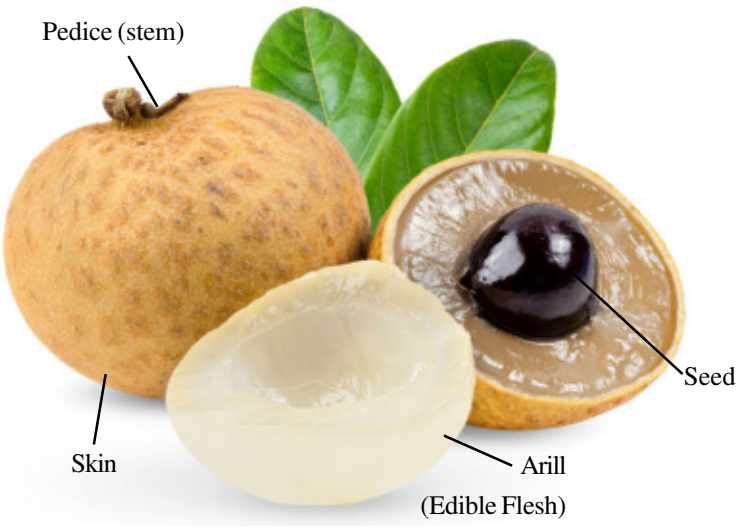

शीर्ष मुण्डन के 1 माह के अन्दर पौधे के मुख्य तने पर अनेक कल्ले निकलते हैं, जिनमें से उपयुक्त कल्लों (चौड़े कोण, अच्छे विकास, सीधा वृद्धि) को चयनित करके आगे बढ़ाते है और शेष अवांछित कल्लों को उनके निकलने के स्थान से काट कर हटा देते हैं। ध्यान रखना है कि ढांचा निर्माण या पौध वास्तु कला (Plant Architecture) का कार्य पौधों की पूर्ण स्थापना के बाद और उपयुक्त मौसम (अगस्त-सितम्बर) में ही करें। निर्धारित स्थान के अनुसार प्रारम्भ में लांगन के पौधों में प्रथमक और द्वितीयक शाखा के स्तर तक ही वास्तु कला का निर्धारण करते हैं और जैसे-जैसे पौधे बढ़ते जाते हैं वैसे-वैसे अन्य शाखाओ का सृजन और विकास किया जाता है क्योंकि लांगन में 2-3 साल में ही फलन प्रारम्भ हो जाता है। लांगन का पौधा बहुत ही घने क्षत्रक वाला होता है और पौधे के बेहतर प्रदर्शन के लिए प्रकाश भी उतना ही आवश्यक होता है। अतः इसमें क्षत्रक प्रबन्ध एक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रक्रिया होती है। पौधों में फलत खत्म होने के तुरन्त बाद काट-छांट वं पोषण प्रबन्ध द्वारा अगले वर्ष के लिए नये कल्लों का सृजन और समुचित विकास की प्रक्रिया सुनिश्चित करनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग

लांगन के पौधों में प्रतिवर्ष संतुलित मात्रा में खाद एवं उर्वरक का प्रयोग आवश्यक होता है। पांच वर्ष तक के पौधों में 250 ग्राम नत्रजन, 150 ग्राम फॉस्फोरस एवं 100 ग्राम पोटाश प्रतिवर्ष प्रति पौधा के दर से दिया जाता है, जबकि 5-15 वर्ष के पौधों में यह मात्रा 500 ग्राम नत्रजन, 300 ग्राम फॉस्फोरस और 200 ग्राम पोटाश प्रतिवर्ष के दर से दी जाती है। यद्यपि 15 वर्ष से अधिक आयु के लांगन के पौधों में फलन के अनुसार खाद एवं उर्वरक का प्रयोग किया जाता है, परन्तु सामान्य फलन वाले स्वस्थ पौधों में निरन्तरता कायम रखने के लिए 800-1000 ग्राम नत्रजन, 500-600 ग्राम फास्फोरस, 400-500 ग्राम पोटाश के साथ 100 ग्राम जिंक, 100 ग्राम बोरान तथा 100 ग्राम अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों का प्रयोग करना आवश्यक होता है। लांगन के बागीचे में मृदा की भौतिक दशा और रासायनिक संरचना को बनाये रखने के लिए प्रति हेक्टेयर 4-5 टन गोबर की सड़ी खाद एवं 0.3-0.4 टन नीम की खली प्रतिवर्ष दिया जाता है। बगीचे में हरी खाद, आच्छादन फसलें तथा मौसमी फसलों के अन्तरशस्यन से मृदा दशा में सुधार होता है, जिससे पौधे के स्वास्थ्य एवं फलन क्षमता में वृद्धि देखी गयी है।

किस्में

लांगन भारत वर्ष के लिए एक नयी फसल है। अतः अभी तक इसकी कोई स्थापित किस्में उपलब्ध नहीं थीं। भाकृअनुप- राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र ने अपने 20 वर्षों के

शोध के दौरान विभिन्न स्त्रोतों से लांगन के 184 जननद्रव्यों का संग्रहण करके मूल्यांकन किया, जिसके फलस्वरूप प्रथम चरण में NRCL-Lg-6 को एन आर सी एल- लांगन-1 के नाम से चिन्हित करके विकसित किया गया और इस किस्म को 'गण्डकी उदय' के नाम से संस्थान के स्तर पर समर्पित करके वर्ष 2017-18 में अधिसूचित किया गया। यह किस्म बौने पौधों के साथ नियमित फलन और बड़े आकार के फलों वाली किस्म है। इसके फल 12 ग्राम तक होते हैं, जिन्हें फसल नियमन द्वारा 14-15 ग्राम तक बढ़ाया जा सकता है। गण्डकी उदय के एक पौधे से 25-30 किग्रा. फल प्रतिवर्ष पैदा होते हैं। इस किस्म मे कोई रोग और कीट का प्रकोप नहीं देखा गया है।

भाकृअनुप- राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केन्द्र, मुजफ्फरपुर में लांगन के 15 नये जननद्रव्यों को मूल्यांकन एवं विस्तृत चरित्र चित्रण प्रक्रिया द्वारा बेहतर पाया है। इन उदीयमान जननद्रव्यों के प्रदर्शन और निरन्तर फलन के आलोक में आने वाले समय में अनेक किस्मों का विकास किया जा सकता हैं। लांगन के किस्मों में फलों का आकार एक महत्वपूर्ण चुनौती है। विश्व स्तर पर भी 17 ग्राम/फल वजन से अधिक फल आकार वाली किस्में उपलब्ध नहीं है। अतः भारत वर्ष में मौजूद जननद्रव्य विश्वस्तरीय हैं और इनके खेती को बढ़ाने की जरूरत है। केन्द्र द्वारा छोटे बीज और ज्यादा गूदे तथा उच्च गुणवत्ता वाली किस्मों के खोज का निरन्तर प्रयास जारी हैं और आने वाले समय में किसानों को बेहतर विकल्प मिल पायेंगे।

सारणी : लांगन के जननद्रव्यों का चरित्र चित्रण

क्र. सं.	जननद्रव्य	फल लम्बाई (मिमी.)	फल की चौड़ाई (मिमी.)	फल का वजन (ग्रा.)	गूदे का वजन (ग्रा.)	छिल्के का वजन (ग्रा.)	बीज का वजन (ग्रा.)	शुद्ध मात्रा गूदे की अम्लता (प्रतिशत)	मिठास (ब्रिक्स)	अमलता (प्रतिशत)
1.	LG-13	19.10	19.40	6.10	3.50	1.15	1.30	57.38	16.70	0.22
2.	LG-14	18.52	18.86	7.50	4.50	1.12	1.30	60.62	20.30	0.14
3.	LG-16	19.69	19.20	7.80	5.10	1.05	1.42	65.38	19.90	0.10
4.	LG-17	18.70	18.70	7.20	4.60	1.20	1.52	64.21	17.80	0.13
5.	LG-20	19.40	19.96	8.00	5.63	1.17	1.20	70.38	19.50	0.16
6.	LG-24	20.88	21.26	8.00	5.34	1.17	1.48	66.75	19.40	0.13
7.	LG-27	20.21	21.60	8.50	5.60	1.30	1.52	65.88	20.00	0.17
8.	LG-49	18.20	18.00	6.80	4.20	1.20	1.44	60.56	13.20	0.10
9.	LG-50	18.30	18.10	7.00	4.60	1.16	1.29	66.89	14.60	0.10
10.	LG-52	20.28	20.11	7.80	5.26	1.20	1.34	67.44	13.00	0.20
11.	LG-59	19.13	19.50	8.00	5.63	1.03	1.34	70.38	9.18	0.10
12.	LG-65	20.85	21.10	9.20	6.56	1.06	1.58	71.30	16.30	0.14
13.	LG-70	19.10	19.30	6.80	4.30	1.10	1.30	63.64	18.70	0.15
14.	LG-91	18.58	18.80	7.20	4.70	1.14	1.35	67.24	18.50	0.20
15.	LG-105	19.85	20.20	7.40	4.82	1.20	1.38	65.14	20.50	0.16

समस्यायें एवं निदान

लांगन लीची और रम्बुतान से ज्यादा कठोर और सहनशील पौधा है और इसमें कोई खास प्रकार के रोग या कीट भी नहीं लगते हैं। अतः लांगन का उत्पादन कम संसाधनों में भी किया जा सकता है। प्रमुख रोगों में लाल वर्ण (Red Rust) नामक शैवाल पत्तियों तथा टहनियों को प्रभावित करके प्रकाश संश्लेषण

की प्रक्रिया को बाधित करता है और उपज को प्रभावित करता है, जिसे अच्छे क्षत्रक प्रबन्ध और बोर्डोमिक्चर के 2 ग्राम/लीटर घोल से नियंत्रित किया जा सकता हैं। कीट प्रजातियों मे पके फलों को काले चीटों और भौरों से नुकसान होता है, जिन्हें सामान्य कीटनाशकों जैसे फास्फामिडान या क्लोरपायरीफास 1 मिली./लीटर के घोल के छिड़काव से नियंत्रित किया जा सकता है।

फलों की परिपक्वता और तुड़ाई

लांगन के पौधों में फूल मार्च के महीने में लीची के साथ ही आते हैं परन्तु फलों के धीरे-धीरे विकास एवं अधिक उष्मा इकाई के संचयन आवश्यकता के कारण फल जुलाई के अन्त से 15 अगस्त तक पक कर तैयार होते हैं। लांगन की गण्डकी उदय किस्म में पकने के लिए कुल 2600-2800 इकाई उष्मा संचयन की आवश्यकता पड़ती है। लांगन के फलों में जब 60-65 प्रतिशत खाने योग्य गूदा और उसकी मिठास 22-25^0 ब्रिक्स तक पहुँच जाती है, तब फल तोड़ाई तुड़ाई के लिए तैयार होते हैं। इस स्थिति में फल हल्का भूरा हो जाता हैं जिसे तुड़ाई के पश्चात गुच्छों में ही साफ-सुथरा करके गत्तों में बन्द करके विपणन के लिए भेजा जाता है। फलों को पुनेट या थैलों में भी भरकर बेचा जा सकता है। इसके गूदे से डिब्बा बन्द पदार्थ, सूखे हुए गूदे तथा पेय पदार्थ बनाये जाते हैं जिसकी बाजार में बहुत मांग है।

निष्कर्ष

"लांगन एक उभरता हुआ क्षमता और सम्भावना से भरा फल है, जिसका प्रदर्शन भारतीय जलवायु में बहुत उत्साहवर्धक पाया गया है। शोध संस्थान इसके बारीकियों पर निरन्तर कार्य कर रहा है और जो परिणाम अभी तक मिला है, वह यह दर्शाता है कि लांगन एक विकल्प के तौर पर लीची किसान ों और उद्यमियों की आर्थिक स्थिति को सुधारने में योगदान कर सकता है।"

❖❖

लीची फल में कटाई के दौरान भौतिक एवं रासायनिक परिवर्तन

बलवीर सिंह[1], शुभम कुमार कुलश्रेष्ठ[2*] , कुमारी सारिका[3] एवं अमित कुमार सिंह[4]

[1,2]रविन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, रायसेन

[3]विश्व भारती केन्द्रीय विश्वविद्यालय, वीरभूम

[4]बाँदा कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, बाँदा

Corresponding Author - shubham.lucky786@gmail.com

परिचय

लीची एक सदाबहार फल वृक्ष है, जो एक विशेष जलवायु (उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्र) में सर्वोत्तम उत्पादन देता है। इस कारणवश इसका फलोत्पादन, विश्व के कुछ विशेष राष्ट्रों में ही सम्भव है। भारत विश्व का द्वितीय प्रमुख लीची उत्पादक देश है, जबकि लीची उत्पादकता की दृष्टि से भारत का विश्व में प्रथम स्थान है। जिसमे बिहार राज्य देश में उत्पादन में प्रथम है,जो कि नेपाल जैसे समीपवर्ती देश को 126.58 मीट्रिक टन लीची फल निर्यात करने में सबसे बड़ा सहयोग देता है। लीची के बागवान किसान अक्सर, फल तुड़ाई बाद हुए भौतिक, रासायनिक परिवर्तन जानकारियों से अछूते रहने के कारण, इसकी फसल तुड़ाई उपरांत प्रबंधन में दिक्कतों का सामना करते हैं और निर्यात में अच्छी गुणवत्ता का उत्पाद आपूर्ति नही कर पाते हैं। अतः सम्बन्धित लेख लीची के इन्ही भौतिक रासायनिक परिवर्तनों की व्याख्या करता है।

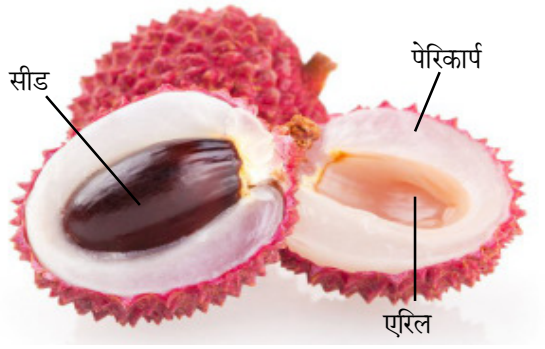

फल आकारिकी

फलों के परिपक्व में तीन अलग-अलग परतें होती हैं। बाहरी एपिकार्प में एक निरंतर छल्ली, एक असमान एपिडर्मिस और सबपीडर्मल स्क्लेरेनेमा शामिल होता हैं। मध्य मेसोकार्प पेरेंकाइमेटस है। आंतरिक एंडोकार्प छोटे, पतले-दीवार वाले और असंबद्ध एपिडर्मल कोशिकाओं से बना होता है। परिपक्व लीची पेरिकार्प 1.3 मिमी मोटी होती है और इसमें तीन अलग-अलग परतें होती हैं। सबसे बाहरी एपिकार्प में लगातार छल्ली 1.3 मिमी मोटी, एकल एपिडर्मल परत और उप-एपिडर्मल स्केरेनकाईमा है। मेसोकार्प पैरेन्काइमा से बना होता है तथा इसमें क्लोरोफिल और अधिकांशतः एंथोसायनिन होता हैं। अंतिम भाग एन्डोकार्प झिल्लीदार होता है और इसमें छोटी, पतली-दीवार वाली, असंबद्ध एपिडर्मल कोशिकाएं शामिल होती हैं। लीची फल शंक्वाकार, गोलाकार या दिल के आकार का होता है, जिसमें पतले पेरिकार्प होते हैं। फल के विकास के दौरान पेरिकार्प हरा होता है और परिपक्व होने के बाद, एंथोसायनिन को पेरिकार्प में संश्लेषित किया जाता है। फल परिपक्वता और किस्म के आधार पर पेरिकार्प हरे-लाल से पूरे लाल रंग में परिवर्तित हो जाते हैं। फल का खाने योग्य भाग मांसल, पारभासी-सफेद रंग का होता है।

फलों का रंग

पके लीची फल की कटाई के बाद पेरिकार्प के रंग में तेजी से गिरावट जाती है। लीची फल कटाई के बाद तेजी से अपना लाल रंग खो देती हैं।रंग क्षरण का महत्वपूर्ण कारण ब्लैंचिंग या डिहाइड्रेशन, ब्राउनिंग, सक्रिय पॉलीफेनोल ऑक्सीडेज, पेरोक्सीडेज और पेरिकार्प में मौजूद अन्य एंथोसायनिन संबंधित यौगिकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। लीची के फल को SO_2 में डुबोने के बाद पतला HCl के साथ धूमिल किया जाता है ताकि SO_2 ब्लीचिंग के बाद लाल रंग ज्यों का त्यों बना रहे। लीची फल पेरिकार्प शुरू में हरे रंग का होता है लेकिन क्लोरोफिल की सांद्रता में कमी होने के कारण और एंथोसायनिन

संश्लेषण बढ़ने के कारण लाल हो जाता है, जो पके फल की लाल त्वचा के लिए जिम्मेदार है। प्रारंभिक ब्राउनिंग खाने की गुणवत्ता को प्रभावित नहीं करता है, लेकिन भूरे रंग के फल लाल रंग की तुलना में कम कीमत के होते हैं। इसलिए तेजी से त्वचा का भूरा रंग होना लीची उद्योग की प्रमुख समस्याओं में से एक है। क्लोरोफिल गिरावट और एंथोसायनिन संश्लेषण ने लाल रंग के विकास को परिपक्वता के लिए प्रेरित किया है। फूल खिलने के 87 दिनों बाद कटे हुए फलों में 16% तक कुल घुलनशील ठोस पदार्थ पाया जाता है, लेकिन फिर भी फलो में पीला-लाल रंग बना रहता है और कमरे के तापमान पर पांच दिनों तक संग्रहीत करने पर कुछ भूरे रंग का विकास हो जाता है।

फलों का वजन

लीची की खेती में अन्य लीची फलों की तुलना में मुजफ्फरपुर और रोज सेंटेड किस्म के फल का औसत वजन 14.15 से 21.00 ग्राम के बीच होता है। लीची के फल का वजन 8.27 से 21.1 ग्राम, परन्तु कुछ फलो का वजन लगभग 22 ग्राम से 30 ग्राम तक हो सकता है, जबकि खाद्य भाग(गूदा) का वजन 37.30 से 73.6%, पील का वजन 11.73 से 28.7% और बीज का वजन 3.2 से 22.9% तक होता है।

शर्करा

लीची में पकने के दौरान कुल घुलनशील ठोस पदार्थ (टी स स) बढ़ जाते हैं, जो कटाई के समय 13-20% तक पहुंच जाता हैं।परिपक्वता के समय शुष्क वजन के आधार पर एरिल टिशू में कुल शर्करा 55.9-61.4% हो सकती है और एरिल में रिड्यु सिंग शक्कर कुल शक्कर के 70% से अधिक होती है। भंडारण के दौरान कुल घुलनशील ठोस पदार्थ बढ़ जाता है क्योकि फलों से पानी का अधिक नुकसान जाता है। लीची फल की कुल शर्करा अलग-अलग प्रकार की किस्मों के बीच भिन्न- भिन्न और आनुवंशिक कारकों पर निर्भर करती है। रोज सेंटेड किस्म जब भंडारण के 6 वें दिन तक संग्रहीत किया जाय तो लीची फल की कुल घुलनशील ठोस पदार्थ शुरू में बढ़ जाती है और फिर भंडारण के अंतिम दिन तक कम हो जाती है। जब लीची परिपक्व हो जाती है, तो गुदा का पी.एच., कुल घुलनशील ठोस पदार्थ और कुल घुलनशील ठोस अम्ल के अनुपात में वृद्धि हो जाती है।

अम्ल

परिपक्वता के समय, मैलिक एसिड में 80% एसिड होता है,जबकि साइट्रिक, सुसिनिक एसिड, लेवुलिनिक एसिड, ग्लूटरिक एसिड, मैलिक और लैक्टिक एसिड अपेक्षाकृत मामूली घटक है। फलों के विकास और पकने के दौरान टाइट्रे टेबल अम्लता और कुल कार्बनिक अम्ल कम हो जाते हैं परन्तु गुदा की अम्लता अलग- अलग स्थान पर बदलती रहती है, पंजाब में 0.26से 0.5%, उत्तर प्रदेश में 0.21 से 1.01%, पश्चिम बंगाल में 0.39से 1.24% और बिहार में 0.60 से 0.6% होती है। भंडारण के समय श्वसन में कार्बनिक अम्ल के उपयोग के कारण अम्लता में कमी हो सकती है। फलों के विकास के दौरान टाइट्रे टेबल एसिडिटी (टी ऐ) कम और पी. एच. बढ़ जातें है। लीची फलों को शीत-संग्रहित (25 डिग्री सेल्सियस) में रखने के बाद अम्लता तीव्रता से 6 घंटे में ही कम हो जाती है।

विटामिन

एस्कॉर्बिक एसिड प्रकाश, ऑक्सीजन और गर्मी के प्रति संवेदनशील होने के कारण, एंजाइम और गैर-एंजाइमी प्रतिक्रियाओं द्वारा ऑक्सीजन की उपस्थिति में आसानी से ऑक्सीकरण हो जाती है। लीची फलो को व्यापक तापमान पर भंडारण करने

के बाद तीन दिनों में एस्कॉर्बिक एसिड में 52% तक हानि हो जाती है। लीची में विटामिन सी 27.8 मिलीग्राम / 100 ग्राम फलो का वजन पर हो सकता हैं। एस्कॉर्बिक एसिड की मात्रा 17.2 से 32.4 मिलीग्राम / 100 ग्राम ताजा गूदे तक होती है।लीची के फलों में विटामिन सी की मात्रा पेड़ के ऊपरी आधे हिस्से में स्थित फलों में अधिक पाई गई। 25 डिग्री सेल्सियस तापमान तथा कम पर भंडारण अवधि के दौरान एस्कॉर्बिक एसिड की मात्रा कम हो जाती है। लीची फल को 30 दिनों के लिए संग्रहीत संग्रहित किया जा सकता है।

विभिन्न एंटीऑक्सिडेंट यौगिकों जैसेकि फेनोलिक एसिड, फ्लेवोनोइड और प्रोएन्थोसाइनिडिन्स को अलग-अलग लीची की किस्मो में पायी जाती है। इसके उच्च आकर्षक रंग, पोषक तत्व, मीठे स्वाद, विटामिन सी और फेनोलिक यौगिकों की प्रचुरता प्रचुर मात्रा की उपस्थिति के कारण, लीची को विभिन विभिन्न देशों में आयत और निर्यात के लिए महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

एंथोसायनिन

एंथोसायनिन पिगमेंट पहली बार पूर्ण रूप से फूल खिलने के 40 दिनों के बाद पाया गया है और फलो की तुड़ाई तक अधिक मात्रा में बढ़ जाता है। क्लोरोफिल के धारण करने से कीनेटिन की उपस्थिति के कारण एंथोसायनिन के स्तर को कमकर देता है परन्तु कुल फेनोलिक्स में वृद्धि हो जाती है। विशेष रूप से पूरी तरह से पके फल के पेरिकार्प का लाल रंग एंथोसायनिन के कारण होता है, लेकिन भंडारण के दौरान एंथोसायनिन और फेनोलिक्स के स्तर में कमी आ जाती है।

एंथोसायनिन ऊपरी मे सोकार्प टिशू के रिक्त स्थानों में और एपिडर्मिस में कुछ हद तक स्थित होते हैं और इसे क्लोरोफिल क्षरण के साथ जोड़ा जाता है। परिपक्व फल में एंथोसायनिन की मात्रा बढ़ती है और पेरिकार्प में क्लोरोफिल की सांद्रता कम हो जाती है। साइनाइडिन 3-रुटीनोसाइड, साइनाइडिन 3-ग्लूकोसाइड, साइनाइडिन 3-गैलेक्टोसाइड, माल्विडिन 3-एसिटाइलग्लुकोसाइड, पेलार्गोनिडिन 3-ग्लाइकोसाइड और पेलार्गोनिडिन 3, 5-डाइक्लोकोसाइड पेरिकार्प से अलग किया गया है। उच्च-प्रदर्शन वाले तरल क्रो मैटोग्राफी (एचपीएलसी) का उपयोग करके महत्वपूर्ण रंगीन एंथोसायनिन की पहचान साइनाइडिन-3-रुटिंसाइड, साइनाइडिन-3-ग्लूकोसाइड, क्वेरसेटिन-3- रुटिनोइड और क्वरसेटिन -3-ग्लूकोसाइड के रूप में की है। इसमें से प्रमुख एंथोसायनिन साइनेइंडिन 3-रूटिनसाइड है। एंथोसायनिन में वृद्धि प्रारंभिक भंडारण के दौरान हो सकती है। भंडारण के दौरान साइनाइडिन-3-ग्लूकोसाइड (प्रमुख एंथोसायनिन, कुल एंथोसायनिन का 91.9%) में गिरावट के दौरान भूरापन में बहुत अधिक मात्रा में गिरावट हो जाती है।

ब्राउनिंग

लीची फल जल्दी ही खराब हो जाता है और व्यापक तापमान पर 1-2 दिनों के भीतर तेजी से अपने चमक ले लाल रंग को खो देता है। पेरिकार्प ब्राउनिंग लीची फल की सबसे महत्वपूर्ण समस्याओं में से एक है। ब्राउनिंग का मुख्य कारण जैसे कि फलों की परिपक्वता से पहले की जलवायु की स्थिति, डेसिकेशन, चिलिंग, बीमारी, गर्मी तनाव और सेनेसेंस ये सभी कारक होते हैं, जिससे क्लोरोप्लास्ट में स्थित पॉलीफेनॉल ऑक्सीडेज (पीपीओ) और अन्य प्लास्टिड, जो कि फेनोल में स्थित फेनोलिक सब्सट्रेट के साथ प्रतिक्रिया करते हैं और भूरे रंग के पॉलिमर बनाते हैं। फलों पर चोट लगने के कारण भी भूरापन आ जाता है। जबकि लाल पिगमेंटस का गायब होना ब्राउनिंग के समान होता है। लीची के पेरिकार्प में कई फिनोल होते हैं, और ये पोलिफेनोल ऑक्सीडेज (पीपीओ) के लिए एंथोसायनिन से बेहतर सब्सट्रेट हैं।हालांकि, जब ऑर्थो-डिपेनोलिक यौगिकों को ऑर्थो-क्विनोन के साथ ऑक्सीकरण किया जाता है, तो ये क्विनोन एंथोसायनिन को गैर-एंजाइमिक प्रतिक्रिया में ऑक्सीकरण करने में सक्षम होते हैं। लीची से निकाला गया पीपीओ पेरिकार्प से एंथोसायनिन के अर्क का ऑक्सीकरण नहीं कर सकता है, जब तक कि कुछ फिनोल मौजूद न हों। इसलिए, ब्राउनिंग को रंगहीन फिनोलिक्स पर पीपीओ के लिए जिम्मेदार ठहराया जा सकता है, जो लाल एंथोसायनिन के युग्मित ऑक्सीकरण के साथ जुड़ा है। हालांकि, यह माना जाता है कि पॉलीफेनोल ऑक्सीडेज द्वारा लाल रंग का तेजी से क्षरण होता है, जिससे यह भूरे रंग को प्रोत्साहित करता हैं।

पानी की कमी / निर्जलीकरण

लीची पेरिकार्प से पानी का नुकसान 60% और 20 डिग्री सेल्सियस पर 3 दिनों के भंडारण के बाद 50% से अधिक होता है। इसलिए पेरिकार्प के चयनात्मक निर्जलीकरण में पानी और पेरिकार्प के बीच थोड़ा सा प्रतिक्रिया होती है । आखिरकार, अरिल भी पानी खो देता है और फल की ऊपरी परत धुंधली हो जाती है। फल से खोये पानी का अनुपात सापेक्षित आर्द्रता के रूप में 20 डिग्री पर भंडारण में 60% से 95% तक गिर जता

जाता है। लीची फल के वजन में शारीरिक नुकसान में कमी, लीची फल में वाष्पीकरण और वाष्पोत्सर्जन प्रक्रियाओं के कारण हो सकता है।

फलो का फटना

फलों में तुड़ाई के 12 घंटे बाद घनत्व में वृद्धि होने के साथ फल फटना प्रांरभ हो जाता है। ये फलो का फटना संभावित रूप से ऑक्सीकरण प्रक्रियाओं को बढ़ता हैं, जिसके परिणामस्वरूप पेरिकार्प ब्राउनिंग होता है। देर से फलों के विकास के कारण और शुष्क अवधि का उतार-चढ़ाव भी फलों के टूटने को बढ़ा सकता है। फलों के टूटने और अंतर्जात हार्मोन या खनिज पोषण (जैसे- कैल्शियम, मैग्नीशियम और बोरॉन) के बीच संबंध के कारण होता है। फलों के फटने को रोकने लिए प्रारंभिक फलों के विकास के दौरान कैल्शियम की उपलब्धता सबसे महत्वपूर्ण है।

फलो का सड़ना / क्षय

लीची बैक्टीरिया, खमीर और कवक के कारण कटाई के बाद खराब हो जाती है। इसको नियंत्रित करने के लिए कवकनाशी, विकिरण, गर्मी, नियंत्रित वायुमंडल और जैविक एजेंटों का उपयोग करना चाहिए तथा प्रशीतन भण्डारण द्वारा इन्हें (खराब होने की प्रक्रिया) मंद किया जा सकता है।

भंडारण

भंडारण के दौरान तेजी से पेरिकार्प ब्राउनिंग और लीची फलों का खराब होना मुख्य समस्याएं हैं, जिसके फलस्वरूप इसका बाजार मूल्य बहुत ही कम हो होता है। 20 से 30% नुकसान कटे हुए फल से होता है, यहां तक कि खपत से पहले 50% तक, मुख्य रूप से सूक्ष्म जीवों जैसे कि पेरोनोफिथोरालिथी, पेनिसिलियम प्रजाति, कोलेलेट्रिचम प्रजाति के संक्रमण के कारण होने वाले नुकसान से खाद्य पदार्थो के खराब होने की एक प्रमुख समस्या है, जो लीची के फलों के वाणिज्यिक मूल्य को कम करती है। अन्य कवक, जैसे एस्परगिलस, पेनिसिलियम और राइजोपस, लीची के फलों के खराब होने का कारण बन सकती है, जो फलों की त्वचा की चोट के दौरान और बाद में फसल की कटाई के दौरान होती है जबकि कोलेटोट्रिचम, एन्थ्रेक्नोज और बोट्रोडिप्लिपस फंगस या तो फसल में या कटाई के दौरान फलफट (घाव) हो जाता हैं, तो इन फंगस का प्रभाव बहुत तेजी से होता हैं।फलों के विकास के दौरान कभी-कभी फलों के ऊपर सूक्ष्म-दरारें पड जाती है, जो खाद्य संरक्षण रख रखाव के दौरान ख़राब रोगजनकों के लिए प्रवेश का एक द्वार प्रदान कर सकते हैं, जो फलों की सतह को उपनिवेशित करते हैं।

(i) कम तापमान पर भंडारण

लीची की 'बोम्बई' किस्म को 0°C की तुलना में 4°C पर बेहतर रखा जा सकता है। 3-5°C से लेकर 25°C के तापमान में वृद्धि से लाइपेज, फॉस्फोलि पेज़डी (पीएलडी) और लिपोक्सिलेज (एलओएक्स) की बहुत अधिक मात्रा में वृद्धि हो जाती हैं। 1°C भंडारण से फलो को 40 दिनों के लिए अच्छे से रखा जा सकता है। इस उच्च भंडारण तापमान के कारण बेहतर रंग धारण करने की शक्ति बढ़ जाती है, लेकिन रोग का अधिक प्रकोप होता हैं। कम तापमान होने के कारण एन्थोसायनिन में कमी, पॉलीफिनॉल ऑक्सीडेज और झिल्ली रिसाव में वृद्धि, रंग और खाने की गुणवत्ता में परिवर्तन, और फल के आंशिक रूप से खराब होने को रोक देता हैं। प्रशीतित भंडारण के दौरान 15 दिनों के भंडारण के बाद फसल में एंथोसायनिन का स्तर 1.68 मिली ग्रा. से 2.06 मिली ग्रा. बढ़ जाता हैं और फिर धीरे-धीरे घटकर 0.73 मिली ग्रा. हो जाता हैं।

(ii) पैकेजिंग

सही पैकेजिंग सामग्री और पैकिंग विधि का चयन समान रूप से महत्वपूर्ण है। पैकेजिंग ऐसी होनी चाहिए जो फलों को सुरक्षा प्रदान करती हो, संभालना आसान हो, आकर्षक और किफायती हो। लीची जीवन काल को बढ़ाने के लिए फल विभिन्न प्रकार की पैकेजिंग को प्रयोग में लाया गया है। संशोधित वातावरण पैकेजिंग (एमएपी) में वाणिज्यिक स्तर पर कमलागत पर अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। यद्यपि MAP को लीची के फल की पोस्ट हार्टक्वालिटी को लम्बा करने के लिए प्रयोग में लाया गया हैं।

संशोधित वातावरण पैकेजिंग तीन फायदे प्रदान करता हैः

- यह ब्राउनिंग को कम करने में मदद करता है।
- यह खादय संरक्षण को रोगों से नियंत्रित करता है और सील प्लास्टिक फिल्म के अंदर फल के लिए एक उच्च आर्द्रता वातावरण बनाए रखता है।
- परिवहन और भंडारण के दौरान क्रॉस-संदूषण को रोकता है।

प्लास्टिक की थैलियों और बंद पात्र में संशोधित वायुमंडल भंडारण को लीची में पेरिकार्प ब्राउनिंग को कम करने के लिए

प्रयोग में लाया जाता है, हालाँकि सूक्ष्म-छिद्रित पॉलीथीन बैग में पैक लीची के अलावा गैर-छिद्रित बैग की तुलना में कम नुकसान होता है, लेकिन स्वाद खराब हो जाता हैं।

पॉलीविनाइलक्लोराइडत थापॉलीएथिलीन (पीवीसी / पीई) फिल्म रैपिंग का उपयोग करके संशोधित वातावरण पैकेजिंग वजन कम करने और फलों के लाल रंग को बनाए रखने के साथ अधिक दिनों तक प्रभावी होता है। पैकेजिंग विधि के द्वारा फलों से पानी के नुकसान को काफी हद तक कम करके फल के रंग में 40 दिन तक की वृद्धि बढ़ाई जा सकती हैं। पॉलीफेनोलऑक्सीडेज (पीपीओ) फलों के छिलके में अधिक होती है, जो अच्छे रंग प्रतिधारण के साथ भूरे रंग में बदल जाती हैं।

छिद्रित पॉलीइथाइलीन और कैसिया फिस्टुला पत्तियों के साथ कुशनिंग फाइबर बोर्ड में पैक किए गए फल, जैसेकि कुशिंग सामग्री फल की गुणवत्ता को बनाए रखने में बेहतर है। कारूगेटिड फाइबर बोर्ड (सीएफबी) बॉक्स में पैक किए गए फल,लकड़ी के बॉक्स में पैक किए गए फलों की तुलना में पांच दिन बाद तक संग्रहित किए जा सकते हैं। यह एंथोसायनिन को बढ़ाने, श्वसन दर को कम करने और एथिलीन के विकास में भी सहायक होता है।

निष्कर्ष

लीची फलों को प्रशीतन भंडारण 0° सेल्सियस तापमान पर रखा जाये तो अधिक दिनो तक संग्रहित किया जा सकता है। इसके अलावा अलग अलग तरह की पैकिंग करने से भी फलों को अधिक दिनो तक संग्रहित कर सकते है। इसमें प्लास्टिक की थैलियों (सूक्ष्म-छिद्रित पॉलीथीन बैग या गैर-छिद्रित पॉलीथीन बैग), पॉलीविनाइल क्लोराइड तथा पॉलीएथिलीन और कारुगेटिव फाइवर बोर्ड, संशोधित वायुमंडलीय पैकेजिंग तथा फलों की पत्तियों में रखने से फलो के रंगों के साथ साथ लंबे दिनो तक सुरक्षित रखा जा सकता है। इससे फलो को अधिक नुकसान नहीं होता और शरीर के लिए हानिकारक भी नहीं होता, क्योकि इसमें हम किसी भी रसायनों का प्रयोग नहीं करते है। यदि यह प्रक्रिया सभी किसान लोग अपनाते है तो इससे किसानो को अधिक फायदा होगा यह सामग्री अधिक खर्चीली नहीं होती है तथा आसानी से उपलब्ध करायी जा सकता है।

❖❖

चुकन्दर का पौष्टिक एवं चिकित्सकीय महत्व

धर्मदेव चैहान[1] , अमित कुमार मौर्य[2*] एवं पवन कुमार गौतम[3]

[1]श्री बालाजी कृषि महाविद्यालय, कुकुही, बालामऊ, कछौना, हरदोई

[2]सैम हिग्गिनबॉटम कृषि, प्रोद्दोगिकी एवं विज्ञान विश्वविद्यालय, प्रयागराज

[3]चंद्र शेखर आजाद कृषि और प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर

Corresponding Author - maurya.amit856@gmail.com

परिचय

आधुनिक युग में मनुष्य अपनी व्यस्ततम दिनचर्या के कारण विभिन्न प्रकार के रोगों का शिकार हो रहा है। जिसके लिए मनुष्य के खान-पान का तरीका मुख्य रूप से जिम्मेदार है। मनुष्य आधुनिकता के भ्रम में फँसकर अपने भोजन का तरीका बदल चुका है, जिसके कारण आधुनिक पीढ़ी तमाम प्रकार की बीमारियों से जूझ रही है। जिससे निदान के लिए पोषणविद् एवं डॉक्टर्स मनुष्य को अपनी खान- पान में विभिन्न प्रकार के लौहयुक्त तथा विभिन्न प्रकार के पोषक तत्व युक्त सब्जियों के सेवन पर जोर दे रहे हैं, जिसमें चुकंदर का प्रमुख स्थान है।

शर्करायुक्त फसल

भारत के किसानों के लिए शर्करा देने वाली फसलों में चुकंदर का मुख्य स्थान है। गन्ने के विकल्प के रूप में शर्करा के लिए चुकंदर की फसल भारत में वर्षों से उगाई जा रही है। पूरे विश्व में लगभग 35-40 प्रतिशत शर्करा चुकंदर से प्राप्त की जाती है। ठन्डे प्रदेशों में चीनी का मुख्य स्त्रोत चुकंदर ही है। पर्वतीय क्षेत्रों में जहाँ गन्ना नहीं उगाया जा सकता, वहाँ चीनी के लिए चुकंदर की खेती की जाती है। चुकंदर में विभिन्न प्रकार के पोषक तत्व पाए जाते है, जो चिकित्सकीय रूप से स्वास्थ्य के लिए अत्यंत गुणकारी होते हैं।

चुकंदर का वैज्ञानिक नाम बीटा वल्गेरिस है, जो चिनोपीडीएसी कुल का पौधा है। यह पौधे का जड़ वाला हिस्सा होता है। इसका सेवन अक्सर सलाद और जूस के रूप में किया जाता है। चुकंदर खाने के लाभ उठाने के लिए भोजन के साथ सलाद के तौर पर सेवन करने के अलावा चुकंदर का प्रयोग औषधि और फूड कलर के रूप में भी किया जाता है। विभिन्न भाषाओं में इसके अलग-अलग नाम हैं जैसे अंग्रेजी में बीटरूट, स्पेनिश में ला रेमोलाचा तथा चीनी भाषा में हांग कै टू आदि।

स्वास्थ्य के लिए लाभदायक

लुभावने लाल रंग के कारण चुकंदर अति लोकप्रिय खाद्य पदार्थ है। चुकंदर में कई ऐसे तत्व पाए जाते हैं, जो स्वास्थ्य के लिए फायदेमंद माने जाते हैं और इसकी गुणवत्ता को बढ़ाते हैं। शरीर में हीमोग्लोबिन की मात्रा बढ़ाने के लिए चुकंदर का उपयोग किया जाता है। हीमोग्लोबिन की मात्रा बढ़ने से मनुष्य में रक्त की मात्रा बढ़ती है, जिससे रक्त की कमी से होने वाले रोग, हिमोफिलिया, एनीमिया आदि से निदान पाया जा सकता है। चुकंदर मनुष्य की सौंदर्यता बरकरार रखने में भी अति लाभदायक होता है। चुकंदर के लाभकारी गुण के कारण इसका उपयोग आमतौर पर सलाद या जूस की तरह किया जाता है। मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए ही नहीं अपितु त्वचा और बालों के लिए भी चुकंदर अति लाभकारी होता है।

विटामिन्स की प्रचुरता

चुकंदर की त्वचा का रंग अलग-अलग हो सकता है जैसे गाढ़ा लाल बैंगनी हल्का लाल, इत्यादि। वहीं बाजार में कुछ हाइब्रिड चुकंदर भी उपलब्ध होते हैं। जो सुनहरी या सफेद छिलके या लाल छिलके पर सफेद धारियों युक्त होते हैं। ऐसी कई शारीरिक समस्याएं हैं जिनसे कुछ हद तक राहत पाने में चुकंदर मदद कर सकता है। चुकंदर में विटामिन और अन्य पोषक तत्वों की समृद्ध मात्रा पाई जाती है।

रक्तचाप में लाभदायक

आधुनिक युग में उच्च रक्तचाप एक गंभीर समस्या है जिसमें धमनियों में रक्त का दबाव सामान्य से अधिक बढ़ जाता है। जिससे हाई ब्लड प्रेशर की समस्या उत्पन्न हो जाती है। अच्छे स्वास्थ्य के लिए धमनियों में रक्त का प्रवाह सामान्य रहना आवश्यक होता है। उच्च रक्तचाप को नियंत्रित करने के कई अत्याधुनिक उपाय खोजे गए हैं, लेकिन प्राकृतिक उपचार में चुकंदर का सेवन किया जा सकता है। चुकंदर में नाइट्रेट नामक यौगिक पाया जाता है, जो उच्च रक्तचाप को कम करने का काम करता है। अतः उच्च रक्तचाप से बचने के लिए प्रतिदिन चुकंदर के जूस का सेवन करना चाहिए।

मधुमेह रोगियों के लिए रामबाण

चुकंदर का जूस पीने से मधुमेह नियंत्रण में लाभ मिलता है। चुकंदर के हाइपोग्लेमिक गुणों के कारण डायबिटीज इलाज में लाभ मिलता है। चुकंदर एक गुणकारी खाद्य पदार्थ है। जिसको प्रतिदिन खाने से रक्त शर्करा संतुलित हो जाती है, जिसके कारण डायबिटीज के मरीजों के लिए यह फायदेमंद है।

रक्ताल्पता को दूर करने में सहायक

आयरन शरीर में लाल रक्त कणिकाओं के बनने में सहायता करता है और लाल रक्त कणिकाएं शरीर के विभिन्न भाग में ऑक्सीजन के आवागमन का कार्य करती हैं। मनुष्य के शरीर में लाल रक्त कणिकाओं की कमी से एनीमिया नामक बीमारी हो जाती है। एनीमिया ऐसी अवस्था होती है, जब शरीर में आयरन की कमी से पर्याप्त लाल रक्त कोशिकाएं नहीं बन पाती। एनीमिया के उपचार हेतु चिकित्सकों द्वारा आयरन युक्त खाद्य पदार्थ का सेवन करने की सलाह दी जाती है। अतः एनीमिया जैसी घातक बीमारी से बचने के लिए चुकंदर का निरंतर सेवन करना अति लाभकारी होता है।

कैंसर रोधक

कैंसर जैसी घातक बीमारी में भी चुकंदर लाभप्रद होता है। चुकंदर का प्रतिदिन सेवन फेंफड़ों और त्वचा के कैंसर से सम्बंधित कोशिकाओं को शरीर में विकसित होने से रोक सकता है। गाजर और चुकंदर का जूस एक साथ मिलाकर पीने से शरीर में ब्लड कैंसर की आशंका को कम किया जा सकता है।

ऊर्जा वर्धक

चुकंदर का जूस पीने से शरीर का थकान कम होता है। इसके सेवन से शरीर को तुरंत एनर्जी मिलती है। इसलिए चुकंदर का जूस एथलीटों की कार्डियोरेस्पिरेटरी एंड्यूरेंस क्षमता को बढ़ाता है। इससे वो जल्दी थकते नहीं हैं और उनका प्रदर्शन बेहतर होता है।

हृदय रोगों में लाभदायक

चुकंदर खाने से हृदय सम्बंधित बीमारियों में लाभ मिलता है। हृदय शरीर का सबसे महत्वपूर्ण भाग होता है, जिसका स्वस्थ रहना अति आवश्यक है। चुकंदर का उपयोग हृदय को स्वस्थ रखने का काम करता है। इसमें मौजूद नाइट्रेट युक्त तत्व रक्तचाप को सामान्य कर हृदय रोग और हृदयाघात से बचा सकता है। इसमें मौजूद जरूरी विटामिन्स और मिनरल्स हृदय को स्वस्थ बनाये रखते हैं। हृदय सम्बन्धित रोगों से बचने के लिए चुकंदर का सेवन प्रतिदिन करना चाहिए। चुकंदर कैल्शियम का अच्छा स्रोत है, जिसका हड्डियों की मजबूती के लिए शरीर में होना आवश्यक होता है। चुकंदर खाने के लाभ में न सिर्फ हड्डियों बल्कि दांतों को भी मजबूत करना शामिल है।

गर्भवती महिलाओं के लिए लाभदायक

शरीर में किसी भी प्रकार के सूजन को खत्म करने के लिए एंटीइंफ्लेमेटरी प्रभाव की जरूरत पड़ती है। चुकंदर में पाए जाने वाले बीटालेन नामक तत्व में एंटीइंफ्लेमेटरी गुण होते हैं, जो शरीर से सूजन को कम करने में सहायता करते हैं। चुकंदर फॉलेट का अच्छा स्रोत होता है, जिसे गर्भावस्था के दौरान जरूरी विटामिन माना जाता है। यह शिशु में जन्म के दौरान होने वाली विकृतियों की आशंका को कम कर सकता है, साथ ही यह भ्रूण के विकास में भी मदद करता है और उसकी रीढ़ व मस्तिष्क के विकास में सहायक होता है। फोलेट कोशिकाओं को स्वस्थ बनाए रखने में और नए स्वस्थ सेल को बनाने में मदद करता है। इसलिए गर्भावस्था के दौरान चिकित्सकों द्वारा चुकंदर के जूस का सेवन करने का सलाह दिया जाता है।

मेटाबॉलिक क्रियाओं में लाभदायक

शरीर में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा ज्यादा होने से दिल के दौरे का खतरा बढ़ जाता है, जिससे हृदय अघात का खतरा बना रहता है, इसीलिए इसे नियंत्रित करने में चुकंदर के जूस के फायदे देखे गए हैं। लिवर से जुड़ी समस्याओं से बचने के लिए चुकंदर का सेवन लाभकारी होता है। चुकंदर उच्च वसा युक्त भोजन से लिवर को होने वाली ऑक्सीडेटिव क्षति को कम करने में मदद करता है। चुकंदर में फ्लेवोनॉयड नामक रसायन भी पाया जाता है, जो मेटाबॉलिज्म को सुचारु बनाये रखने में सहायता करते हैं, साथ ही चुकंदर लिवर को डिटॉक्सिफाई करके उसे साफ और स्वस्थ बनाये रखने में मदद करता है। चुकंदर में प्रचुर मात्रा में एंटीऑक्सीडेंटस पाए जाने के कारण यह शरीर की विभिन्न व्याधियों से रक्षा करता है।

यौन रोगों में लाभदायक

माहवारी ऐसी समस्या है, जिससे सभी महिलाएं हर महीने गुजरती है। इस दौरान महिलाओं के शरीर के विभिन्न हिस्सों में दर्द होना, चिड़चिड़ापन होना आदि सामान्य बात है। इस दर्द से राहत पाने के लिए कई महिलाएं दवा का सेवन करती है। ऐसे में किसी एलोपैथिक दवा के साथ चुकंदर का उपयोग फायदेमंद हो सकता है। चुकंदर का उपयोग पुरुषों में यौन क्रिया सम्बन्धी हॉर्मोन को बढ़ाने में मदद करता है। चुकंदर के जूस में मौजूद नाइट्रिक ऑक्साइड काम कर सकता है। बताया जाता है कि यह पेनाइल इरेक्टाइल डिसफंक्शन को ठीक करने यानी पुरुषों में नपुंसकता को ठीक करने में मदद कर सकता है। चुकंदर का अर्क ग्लूकोसिलेरैमाइड नामक तत्व से समृद्ध होता है, जो त्वचा की ऊपरी परत को सुरक्षित बनाए रखने में मदद कर सकता है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि चुकन्दर एक पौष्टिक सब्ज़ी है।चुकन्दर के सेवन करने से रोग प्रतिरोधक क्षमता विकसित होती है एवं साथ ही साथ यह कैंसर जैसी गंभीर बीमारियों से भी बचाव करती है। चुकन्दर शर्करा प्राप्त करने का भी अच्छा स्रोत है। चुकन्दर शरीर को तुरन्त ऊर्जा प्रदान करता है। अतः मनुष्य को विभिन्न प्रकार की बीमारियों से बचने के लिए चुकंदर का निरंतर सेवन करना चाहिए।

❖❖

सघन बागवानी की तकनीक

सुनील चन्द्रा

के. पी. उच्च शिक्षा संस्थान झलवा, प्रयागराज

Corresponding Author - samarpan031@gmail.com

परिचय

आज भारत विश्व में फल उत्पादन में चीन के बाद दूसरे स्थान पर है। देश में इस समय फलों को उपलब्धता मात्र 96 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रति दिन है, जबकि मेडिकल विशेषज्ञों के अनुसार फलों की उपलब्धता कम से कम 120 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रति दिन होनी चाहिये। भारत में मुख्य फलों की उत्पादकता अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम है, जबकि इनकी उत्पादन क्षमता बहुत अधिक है।

यह विदित है कि तेजी से हो रहे शहरीकरण, औद्योगिकरण एवं भूखण्डन के कारण बागवानी के लिए उपलब्ध भूमि क्षेत्र दिन प्रति दिन कम होता जा रहा है। इसके अलावा उपयुक्त भूमि की कमी, उच्च प्रबन्धन लागत, पर्याप्त जल की कमी, श्रम समस्याएँ एवं खर्च पर अतिशीघ्र लाभ की आवश्यकता के कारण यह बहुत ही आवश्यक हो गया है कि यथासम्भव कम से कम समय एवं लागत पर अधिकतम सम्भव लाभ प्राप्त करने के बारे में सोचा जाए। इस परिस्थिति में सघन बागवानी कसौटी पर खड़ी उतरती है, जिसमें उपयुक्त समस्याओं का समाधान छुपा है।

सघन बागवानी का सर्वप्रथम प्रयोग यूरोपीय देशों में आड़ू में किया गया, जो बहुत ही सफल रहा। बाढ़ में सघन बागवानी अन्य शीतोष्ण फलों जैसे सेब, नाशपाती, खुबानी, अलूचा इत्यादि में भी सफल रही, जिसके परिणामस्वरूप इन फलों के उत्पादकता में बेतहाशा वृद्धि हुई। यही कारण है कि यूरोपीय देशों, संयुक्त राज्य अमेरिका, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड आदि में प्रमुख फलों के बगीचे सघन बागवानी के अन्तर्गत है। बिहार में सघन बागवानी प्रमुख फलों जैसे- आम, अमरूद, पपीता, केला, अनानास इत्यादि में शुरू किया गया है। लेकिन जरूरत है इसको नई पैमाने पर अपनाने की।

सघन बागवानी

प्रति इकाई क्षेत्रफल में अधिक से अधिक फल वृक्षों का समावेश करते हुए एवं मिट्टी की उत्पादन क्षमता खराब न करके उसकी लगातार अधिकाधिक एवं अच्छी गुणवत्ता वाली फसल लेना ही सघन बागवानी कहलाता है।

सघन बागवानी की मूलभूत तकनीकियां

सघन बागवानी के लिये बौने पौधों का होना अत्यंत आवश्यक है ताकि प्रति इकाई क्षेत्रफल में अधिक से अधिक पौधों का समावेश हो सके। फलों के इष्टतम अंतराल खोजने के उद्देश्य से बौनी किस्मों के विकास, बौने, मूलवृत के उपयोग एवं पादप वृद्धि नियंत्रकों का प्रयोग इत्यादि के प्रयास किए गए हैं। इसके अतिरिक्त उन्नत किस्मों के लिए कम दूरी, कटाई-छंटाई, ट्रेनिंग, कोणीय आधार पर बाग स्थापना एवं विषाणुओं के उपयोग से भी कुछ फल वृक्षों में सघन बागवानी के सफल प्रयोग किए गए हैं। इनका विवरण इस प्रकार है-

1. बौनी किस्में-

सघन बागवानी हेतु पौधों का बौना होना आवश्यक है, जिससे अधिक से अधिक पेड़ों को प्रति इकाई क्षेत्रफल में लगाया जा सके। इसके लिए विभिन्न फलों की बौनी प्रजातियां विकसित की गई है और उनका उपयोग सघन बागवानी में किया गया है। जैसे आम की बागवानी किस्म अन्य किस्मों की अपेक्षा काफी बौनी है, जिसे सघन बागवानी के लिए उचित माना गया है। आम की अन्य किस्में जैसे दशहरी, अकां अरूण, अर्का अनमोल आदि भी अपेक्षाकृत बौनी है। जिन्हें कम दूरी पर लगाया जा सकता है। केले की बसराई, अनानाश की क्यू, पपीता की पूसा ड्वार्फ, नींबू की कागजी कला आदि किस्में भी अन्य किस्मों से अपेक्षाकृत बौनी है।

2. बौने मूलवृत-

सघन बागवानी हेतु बौने मूलवृतों का प्रयोग सबसे सफल पाया गया हैं। बौना मूलवृत्त उन्नत किस्मों को बौना बना देता है जिससे उन्हें आसानी से कम दूरी पर लगाया जा सकता है। बौने मूलवृतों का सबसे अधिक लाभ फलदार पौधों में जल्दी फसल प्राप्त करने के लिए किया गया है।

यदि बागवानी को बौने मूलवृत की किस्म पर प्रयोग किया जाए, तो पौधे जल्दी फल देना शुरू कर देते हैं। आम

में ओला, कृपिंग, बेलाबकोलुजन बौने मूलवृत्त है, जिनका प्रयोग भविष्य में सघन बागवानी हेतु किया जा सकता है। अमरुद में एन्यूप्लाइड नं0 82 बौना मूलवृत है।

3. इष्टतम अंतराल-

बागवानी बाग लगाने के उद्देश्य, किस्म विशेष, मिट्टी जलवायु, कटाई, शस्य क्रियायें एवं पौधे लगाने की दूरी पर निर्भर करती है। इनके कारण किसी फल वृक्ष लगाने की दूरी निर्धारित करना थोड़ा कठिन काम हो जाता है। फिर भी वैज्ञानिकों ने फलवृक्षों में उचित दूरी की अनुशंसा की है जो इस प्रकार है-

सारणी-1 परम्परागत व सघन बाग लगाने हेतु दूरी

फल वृक्ष	परम्परागत बाग के पौधों की दूरी (मी0)	सघन बाग के पौधों की दूरी (मी0)
आम	10.12	2.5.3
अमरूद	8.10	3.4
केला	2.8.3.8	1.2.1.8
पपीता	2.5.3.5	1.2.1.8
अनानास	0.4 x 0.75 x 1.20	0.25 x 0.45 x 1.05

प्रयोगों के आधार पर विभिन्न फलों में पौधों की दूरी में समय-समय पर फेर-बदल होते हैं।

4. कटाई-छँटाई (ट्रेनिंग व प्रूनिंग)-

यूरोपीय देशों में मुख्य शीतोष्ण फलों के बाग उचित एवं लगातार ट्रेनिंग के विभिन्न तरीके भी सर्वप्रथम शीतोष्ण फलों में ही अपनाए व तैयार किए गए। आज लगभग विभिन्न फलदार वृक्षों की सधाई हेतु 50 ट्रेनिंग के तरीके अपनाए जा चुके हैं। इनमें से सैटर-लीडर, ओपन, सैटर, स्पिडल बुश, शीर्ष निफिन, बॉवर टेलीफोन, कॉर्डन, लिंकन केनोपी एवं वाई ट्रैलिस आदि प्रमुख है। बाग स्थापना के शुरू के वर्षों में उचित प्रूनिंग की जानकारी होना आवश्यक है। प्रूनिंग कब की जाए, कितनी की जाए, यह सब किस्म विशेष, फल वृक्ष एवं ट्रेनिंग की विधि पर निर्भर करता है। शुरू में ट्रेनिंग व प्रूनिंग पर विशेष ध्यान नही दिया जाता था, परन्तु अनुसंधान कार्यों से पता चला है कि इन फल वृक्षों में ट्रेनिंग व प्रूनिंग का उतना ही महत्व है, जितना शीतोष्ण फलों में। अतः हर फलों के बागों में भी समयानुसार काट-छांट पर विशेष ध्यान दिया जाए। उदाहरणतः आधासाली आम की संभव बाग लगाने के लिए पौधों को पौधा बनाने एवं उचित आकार देने हेतु शुरू के तीन वर्षो में 'पिचिंग ऑफ'' की सलाह दी जाती है। यह पाया गया है कि 12 वर्षों बाद आंध्रपाली के सघन वर्गों में उत्पादन में काफी, कमी आ जाती है। अतः ऐसे बाग में प्रत्येक वर्ष फसलों की तुड़ाई के बाद लगातार प्रूनिंग की जानी चाहिए।।

5. वृद्धि नियामकों का उपयोग-

पौधे की वृद्धि रोकने वाले कई वृद्धि नियामकों का प्रयोग फलदार पौधों को बनाने के लिए किया गया है ताकि इनके सघन बाग लगाए जा सकें जैसे - ए, एन.ओ-1618, फॉस्फीन-डी, कल्टार (पैक्लोबुटरजोल) इत्यादि। कस्टर (पैक्लोब्युट्रोजोल) तो बागवानी के लिए अद्भूत वृद्धि नियामक सिद्ध हुआ है। इसके उपयोग से न केवल पौधे बौने ही होते है, बल्कि उनकी उत्पादन क्षमता में भी अत्यधिक वृद्धि होती है व द्विवर्षीय फसल की समस्या भी काफी हद तक हल हो सकती है। कल्टार का प्रयोग भूमि में हर तीसरे वर्ष किसी विशेषज्ञ की सलाह से किया जाना चाहिए।

सघन बागवानी से लाभ

सघन बागवानी के कई लाभ है जिस कारण विदेशों में इसे युद्ध स्तर पर अपनाया गया है और अपने देश में भी इसकी अच्छी शुरूआत हो गई है। इसके प्रमुख लाभ हैं-

- फलों के उत्पादन एवं उत्पादकता में आश्चर्यजनक वृद्धि
- शुरू के वर्षों में ही कुछ न कुछ फसल मिलना।
- पेड़ों के बीच खाली जगह का भरपूर उपयोग
- फलों की गुणवत्ता में सुधार।
- खरपतवारों की संख्या में कमी।
- खाद एवं उर्वरकों का अधिकाधिक उपयोग।
- पानी की समुचित उपयोग।

सघन बागवानी से हानि

- बाग लगाने हेतु आरम्भ में अधिक व्यय।
- कुल फलवृक्षों से फलों के आकार में कमी आ जाती है।
- कभी-कभी फलों के रंग में भी कमी आ जाती है।
- सस्य क्रियाओं जैसे कीटनाशी एवं फफूंदनाशी का छिड़काव, फलों की तुड़ाई आदि में कठिनाई।

सघन बागवानी पर एक नजर

फल	मुख्य तकनीक	रोपण दूरी	रोपण विधि	पौधों की संख्या प्रति हे0	संभावित उत्पादन (टन/हे0)
1. आम	1.बौनी किस्म आम्रपाली	2.5 × 2.5 मी0	तिकोनी	1600	22
	2. ओजस्वी किस्मों में 'डीहॉनिंग' तकनीक	2.5 × 2.3 मी0	आयताकार	1333	18
2. अमरूद	बौना मूलवृत (एन्यूप्लाएड नं0 82)	3 × 3 मी0	वर्गाकार	1111	25-30
3.केला	'कम दूरी' तकनीकी	1.2 ×1.2 मी0 (बसराई)	वर्गाकार	6944	174
		1.8 × 1.8 (पुवन)		3074	99
4. अनानास	बौनी किस्म (क्यु)	25 × 60 × 75 सेमी0 दोहरी कतार विधि	दोहरी	63700	118
5 पपीता	बौनी किस्म (पूसा नन्हा, पूसा डवार्फ)	1.2 × 1.2 मी0	वर्गाकार	6400	60-65

निष्कर्ष

वर्तमान समय में बढ़ते शहरीकरण के कारण खेती युक्त भूमि की समस्या उत्पन्न हो गयी है।ऐसे मे कम में अधिक उपज प्राप्त करना एक चुनौती है। यदि अधिक उपज प्राप्ति के लिये सघन बागबानी की तकनीक को अपनाया जाय, तो कम भूमि में अधिक उपज प्राप्त किया जा सकता है । यदि किसानो को इस तकनीक का प्रशिक्षण दिया जाता है,तो किसान अपनी आय को और अधिक बढ़ा सकते है।

❖❖

जैविक खेती में ट्राइकोडर्मा एक उपयोगी कवक

खलील खान[1*] एवं वी. के. कनौजिया[2]

[1,2] कृषि विज्ञान केन्द्र, कन्नौज प्रसार निदेशालय,

चन्द्रशेखर आज़ाद कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कानपुर

Corresponding Author – Khankhalil64@gmail.com

परिचय

खाद्य सुरक्षा और पोषण के लक्ष्यों को प्राप्त करने, जलवायु परिवर्तन से लड़ने और समग्र सतत विकास सुनिश्चित करने के लिये स्वस्थ मृदा की जरूरत है। इस दिशा में मृदा के साथ लोगों को जोड़ने और हमारे जीवन में उनके महत्व के प्रति जागरूकता का प्रसार करने के लिये पूरे देश में विश्व मृदा दिवस मनाया जाता है। 68 वीं संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा वर्ष 2015 को अन्तर्राष्ट्रीय मृदा वर्ष घोषित किया गया था। इस सन्दर्भ में मृदा में सूक्ष्म जीवों के महत्व की चर्चा करना काफी प्रासंगिक है। सूक्ष्म जीव स्वस्थ मृदा का बहुत ही महत्वपूर्ण घटक है। मृदा में होने वाली समस्त गतिविधियों में ये प्रत्यक्ष रूप से अपनी भूमिका अदा करते है। इनमें से कुछ रोगजनक तो कुछ फायदेमन्द होते हैं। मिट्टी में अपने अस्तिव के लिये इनमें निरन्तर प्रतिस्पर्धा चलती रहती है। इनकी आबादी का अन्दाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि एक चम्मच मिट्टी में इनकी संख्या लाखो में होती है। इसी कड़ी में ट्राइकोडर्मा नामक मित्र कवक की विस्तृत चर्चा और खेतों में इसके व्यावहारिक प्रयोग के लिये दिशा निर्देश की जानकारी जरूरी है। ट्राइकोडर्मा पौधों के जड़-विन्यास क्षेत्र (राइजोस्फियर) में खामोशी से अनवरत कार्य करने वाला सूक्ष्म कार्यकर्ता है। यह एक अरोगकारक मृदापजीवी कवक है, जो प्रायः कार्बनिक अवशेषों पर पाया जाता है। इसकी दो प्रजातियाँ विशेष रूप से प्रचलित है। ट्राइकोडर्मा विरिडी एवं ट्राइकोडर्मा हर्जियानम। यह बहुत ही महत्वपूर्ण एवं कृषि की दृष्टि से उपयोगी है। यह एक जैव कवकनाशी है और विभिन्न प्रकार की कवक जनित बीमारियों को रोकने में मदद करता है। इससे रासायनिक कवकनाशी के ऊपर निर्भरता कम हो जाती है। इसका प्रयोग प्रमुख रूप से रोगकारक जीवों की रोकथाम के लिये किया जाता है। इसका प्रयोग प्राकृतिक रूप से सुरक्षित माना जाता है क्योंकि इसके उपयोग का प्रकृति में कोई दुष्प्रभाव देखने को नहीं मिलता है।

ट्राइकोडर्मा द्वारा रोग नियंत्रण

ट्राइकोडर्मा मुख्यतः एक जैव कवकनाशी है। यह रोग उत्पन्न करने वाले कारकों जैसे फ्यूजेरियम, पिथियम, फाइटोफ्थोरा, राइजोक्टोनिया, स्क्लैरोशियम, स्कलैरोटिनिया इत्यादि मृदापजनित रोगजनकों की वृद्धि को रोककर अथवा उन्हें मारकर पौधों में उनसे होने वाले रोगों से रक्षा करता है। इसके अलावा ये सूत्रकृमि से होने वाले रोगों से भी पौधों की रक्षा करते है। यह मुख्यतः दो प्रकार के रोगकारकों की वृद्धि को रोकता है। प्रथम यह विशेष प्रकार के प्रति जैविक रसायनों का संश्लेषण एवं उत्सर्जन करता है, जो रोगकारक जीवों के लिये विष का काम करते है। दूसरा यह प्रकृति में रोगकारकों पर सीधा आक्रमण कर उसे अपना भोजन बना लेता है या उन्हें अपने विशेष एन्जाइम जैसे काइटिनेज, ग्लूकानेज द्वारा तोड़ देता है। इस प्रकार रोगकारक जीवों की संख्या तथा उनसे होने वाले दुष्प्रभाव को कम करके पौधों की रक्षा करता है। यह पौधों में उपस्थित रोगरोधी जीन्स को सक्रिय कर पौधों की रोगकारकों से लड़ने की आन्तरिक क्षमता का भी विकास करता है।

ट्राइकोडर्मा के प्रयोग से लाभ

- यह रोगकारक जीवों की वृद्धि को रोकता है या उन्हें मारकर पौधों को रोग मुक्त करता है। यह पौधों की रासायनिक प्रक्रियाओं को परिवर्तित कर पौधों में रोगरोधी क्षमता को बढ़ाता है। अतः इसके प्रयोग से रासायनिक दवाओं, विशेषकर कवकनाशी पर निर्भरता कम हो जाती है।
- यह पौधों में रोगकारकों के विरूद्ध तंत्रगत अधिग्रहित प्रतिरोधक क्षमता (सिस्टेमिक एक्वायर्ड रेसिस्टेन्स) की क्रियाविधि को सक्रिय करता है।
- यह मृदा में कार्बनिक पदार्थों के अपघटन की दर बढ़ाता है। अतः यह जैव उर्वरक की तरह काम करता है।
- यह पौधों में एंटीआक्सीडेंट गतिविधि को बढ़ाता है। टमाटर के पौधों में यह देखा गया है कि जहाँ मिट्टी में

ट्राइकोडर्मा डाला गया। उन पौधों के फलों की पोषक तत्वों की गुणवत्ता, खनिज तत्व और एंटीऑक्सीडेंट, गतिविधि अधिक पायी गयी।

- यह पौधों की वृद्धि को बढ़ाता है, क्योंकि यह फॉस्फेट एवं अन्य सूक्ष्म पोषक तत्वों को घुलनशील बनाता है। इसके प्रयोग से घास और कई अन्य पौधों में गहरी जड़ों की संख्या में बढ़ोत्तरी दर्ज की गयी जो उन्हें सूखे में भी बढ़ने की क्षमता प्रदान करती है।
- यह कीटनाशकों, वनस्पतिनाशकों से दूषित मिट्टी के जैविक उपचार (बायोरिमेडिएशन) में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। इनमें विविध प्रकार के कीटनाशक जैसे ऑरगेनोक्लोरिन, ऑरगेनोफास्फेट एवं कार्बोनेट समूह के कीटनाशकों को नष्ट करने की क्षमता होती है।

ट्राइकोडर्मा के प्रयोग में सावधानियाँ

- कल्चर/ फार्मूलेशन छः महीने से ज्यादा पुराना न हो।
- बीज-पौधे उपचार का कार्य छायादार एवं शुष्क स्थान पर करें।
- ट्राइकोडर्मा के साथ-साथ अन्य कवकनाशी रसायनों का प्रयोग न करें।
- ट्राइकोडर्मा के प्रयोग के 4-5 दिनों के पश्चात् तक रासायनिक कवकनाशी का प्रयोग न करें।
- सूखी मिट्टी में ट्राइकोडर्मा का प्रयोग न करें। नमी इसके विकास और बचे रहने के लिये एक अनिवार्य पहलू है।
- ट्राइकोडर्मा उपचारित बीज को सूर्य की सीधी धूप न लगने दें।
- कार्बनिक खाद में मिलाने के बाद इसे लम्बी अवधि के लिये न रखे।

ट्राइकोडर्मा के प्रयोग की विधि

बीजोपचार के लिये प्रति किलो बीज में 5-10 ग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर (फार्मूलेशन) जिसमें 2106 सी0एफ0यू0 प्रति ग्राम होता है, को मिश्रित कर छाया में सुखा लें फिर बुवाई करें।

कंद उपचार

10 ग्राम ट्राइकोडर्मा प्रति लीटर पानी में डालकर घोल बना लें फिर इस घोल में कंद को 30 मिनट तक डुबाकर रखें। इसे छाया में आधा घंटा रखने के बाद बुवाई करें।

सीड प्राइमिंग

बीज बोने से पहले खास तरह के घोल की परत बीजों पर चढ़ाकर छाया में सुखाने की क्रिया को सीड प्राइमिंग कहा जाता है। ट्राइकोडर्मा से सीड प्राइमिंग करने हेतु सर्वप्रथम गाय के गोबर का गारा (स्लरी) बनाये। प्रति लीटर गारे में 10 ग्राम ट्राइकोडर्मा उत्पाद मिलायें और उसमें लगभग एक किलोग्राम बीज डुबोकर रखें। इसे बाहर निकालकर छाया में थोड़ी देर सूखने दें फिर बुवाई करें। यह प्रक्रिया खासकर अनाज, दलहन और तिलहन फसलों की बुवाई से पहले की जानी चाहिये।

मृदा शोधन

एक किलोग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर को 25 किलोग्राम कम्पोस्ट (गोबर की सड़ी खाद) में मिलाकर एक सप्ताह तक छायादार स्थान पर रखकर उसे गीले बोरे में ढंके ताकि इसके बीजाणु अंकुरित हो जाये। इस कम्पोस्ट को एक एकड़ खेत में फैलाकर मिट्टी में मिला दें फिर बुवाई/ रोपाई करें।

नर्सरी उपचार

बुवाई से पहले 5 ग्राम ट्राइकोडर्मा उत्पाद प्रति लीटर पानी में घोलकर नर्सरी बेड को भिगोयें। कलम और अंकुर पौधों की जड़ डुबोकर एक लीटर पानी में 10 ग्राम ट्राइकोडर्मा घोल लें और कलम एवं अंकुर पौधों की जड़ों को 10 मिनट के लिये घोल में डुबोकर रखे फिर रोपण करें।

पौधा उपचार

प्रति लीटर पानी में 10 ग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर का घोल बनाकर पौधों के जड़ क्षेत्र को भिगोयें।

पौधों पर छिड़काव

कुछ खास तरह के रोगों जैसे पूर्ण चित्ती, झुलसा आदि की रोकथाम के लिये पौधों में रोग के लक्षण दिखायी देने पर 5-10 ग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

ट्राइकोडर्मा संवर्धित खाद

इस विधि से किसान एक व्यावसायिक उत्पाद की छोटी मात्रा से पर्याप्त मात्रा अपने स्तर पर बनाकर न केवल बड़े क्षेत्र में प्रयोग कर सकते है। बल्कि अपने ही स्तर पर इसे बनाकर कर ज्यादा से ज्यादा फसलों में भी प्रयोग कर सकते है। पर ध्यान रखें कि यह लम्बी अवधि के लिये न करें। 100 किलोग्राम सड़ी गोबर की खाद वर्मीकम्पोस्ट या नीम की खली

ट्राइकोडर्मा के इस्तेमाल द्वारा नियंत्रित कुछ रोग		
फसल का नाम	**रोग का नाम**	**रोगजनक का नाम**
जिमीकंद/ ओल	मृदा स्तर पर तना गलन/ मूल सन्धि गलन (कालररांट)	स्क्लैरोशियम
मिर्च, टमाटर, बैगन	गलन/ अंकुर गलन (डैम्पिंग ऑफ)	पिथियम, फाइटोप्थोरा, फ्यूजेरियम
हल्दी, अदरक, प्याज	कन्द सड़न	पिथियम, फाइटोप्थोरा, फ्यूजेरियम
केला, कपास	म्लानि बिल्ट	फ्यूजेरियम, आक्सीस्पोरम
लीची	म्लानि (बिल्ट)	फ्यूजेरियम, सोलानी

लें। इसे किसी छायादार शेड में फैलाकर रखें। फिर इसके ऊपर एक किलोग्राम ट्राइकोडर्मा पाउडर बुरक दें और कुदाल या फावड़े से अच्छी तरह मिलायें। अगर यह सूखी लगे तो हल्की पानी की छीटे दे दें। इसके बाद इसे पालीथीन से ढक दें। हर 7 दिन के अन्तराल पर मिश्रण को मिलायें। लगभग 20 दिन में खाद ट्राइकोडर्मा संवर्धित हो जायेगी जिसे खेतों में विस्तारित कर अथवा गड्ढे में डालकर फसल लगायें। बागवानी पौधों जैसे आम लीची इत्यादि में रिंग बेसिन बनाकर संवर्धित खाद डाली जा सकती है।

निष्कर्ष

यह रोगकारक जीवों की वृद्धि को रोकता हे या उन्हें मारकर पोधों को रोगमुकत करता है। यह पौधों को रासायनिक प्रक्रियाओं को परिवर्तित कर पौधों में रोगरोधी क्षमता को बढ़ाता है। इसके प्रयोग से रासायनिक दवाओं विशेषकर कवकनाशी पर निर्भरता कम होती है। ट्राइकोडम्र का प्रयोग बीजोपचार, कन्द उपचार, सीड प्राइमिंग, मृदा शोधन, उपचार, कलम और अंकुर पौधों पर छिड़काव आदि करने से फसल निरोगी हो जाती है जिससे किसानों को आर्थिक लाभ होता है।

❖❖

भरपूर पोषण के साथ रखे अपनों का ख्याल-गृह वाटिका

प्रतिभा[1*], राजाराम बुनकर[2], विनय कुमार कर्दम[3] एवं अलका[4]

[1]उधान विज्ञान विभाग,राजस्थान कृषि महाविद्यालय

[2]महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर

[3]पादप व्याधि विभाग,स्वामी केशवानन्द राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय, बीकानेर

[4]उद्यान विज्ञान विभाग, इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय,रायपुर

Corresponding Author - prolaniyaskr23@gmail.com

परिचय

गृह वाटिका में सब्जी उत्पादन का प्रचलन प्राचीन काल से चला आ रहा है। इसमें सब्जी उत्पादन का मुख्य उद्देश्य यह है कि पूरे परिवार को साल भर ताजी शाक-सब्जी मिलती रहे। इसमें शाक-सब्जियों के अलावा फल-फूल आदि को भी उगाया जा सकता है। इसी कारण इसे परिवार आधारित रसोई उद्यान अर्थात गृह वाटिका या किचन गार्डन भी कहते है। इस प्रकार के सब्जी उत्पादन मे मुख्य ध्येय आर्थिक लाभ न होकर परिवार के पोषण स्तर को बढ़ाना तथा घर में ही ताजी शाक-सब्जी का उत्पादन करना होता है।

इसके द्वारा आर्थिक लाभ भी कमाया जा सकता है। सब्जियों का चयन परिवार के सदस्यों की इच्छा अनुसार किया जाता है। घर के चारों ओर खाली पड़ी भूमि में छोटी-छोटी क्यारियाँ बना ली जाती है। क्यारियों में फसल चक्र अपनाए जाते है तथा फल-फूल एवं शाक-सब्जी का उत्पादन किया जाता है। गृह वाटिका में बाजार की तुलना में सस्ती एवं उत्तम गुणवत्ता वाली सब्जियां मिलती हैं। गृह वाटिका में उगाई गयी सब्जियों में हानिकारक रासायनिक दवाइयों एवं कीटनाशकों नकली रंग, रसायनों, एवं उन संक्रामक रोगों के जीवाणुओं की उपस्थिति का भय नहीं रहता जो बाजार से खरीदी गयी सब्जियों में होता है। गृह वाटिका द्वारा घर के बच्चों व युवाओं को भी यह कार्य करने की प्रेरणा मिलती है । गृह वाटिका को लकड़ी के डिब्बों गमलों, बेकार टिनों एवं मकान की छतों पर आसानी से बनाया जा सकता है तथा इसमें फल और सब्जियां सफलतापूर्वक उगाई जा सकती है। इसके लिये कीमती कृषि औजारों की आवश्यकता नहीं होती है। घरेलू औजारों को प्रयोग में लिया जा सकता हैं। इसे एक मन भावन शौक के रूप में अपनाया जा सकता है। गृह वाटिका में घरेलू कार्यो में प्रयुक्त हो चुके जल का पौधों की सिंचाई में सदुपयोग होता है एवं घर के कूड़े-करकट का कम्पोस्ट खाद बना कर प्रयोग किया जाता है। सब्जी खरीदने के लिए बाजार नहीं जाना पड़ता बल्कि घर में ही ताजी, स्वादिष्ट शाक-सब्जियां नियमित रूप में मिलती रहती हैं।

गृह वाटिका के लिये उचित स्थान

गृह वाटिका का स्थान घर के निकट होना चाहिए। घर के आगे या पीछे पूर्णतया खुला एवं जहाँ सूर्य का प्रकाश पर्याप्त मात्रा में ऐसे पहुँच सके। ऐसे स्थान का चयन करना चाहिए। गृह वाटिका के लिए दोमट मिट्टी जिसमें जीवांशों की अच्छी मात्रा हो, उपयुक्त रहती है। इसके अतिरिक्त सब्जियों को उगाने के लिए पर्याप्त सिंचाई देना भी आवश्यक होता है। अतः सिंचाई के लिए जल की उपलब्धता भी होनी चाहिए।

गृह वाटिका में क्या-क्या उगाएँ

यदि आपके पास खुली जगह हो, तो उगाने वाली सब्जियों की कोई सीमा नहीं है। फल वाले पेड़ जैसे पपीता, नींबू व अमरूद आदि भी शाक-सब्जियों के साथ-साथ उगाए जा सकते है। पर्याप्त खुला स्थान नहीं है तो आप सीमित तरीके से गृह-वाटिका लगा सकते हैं, जैसे टमाटर, मिर्च, सीताफल, करेला, मटर, मेथी, पालक, मूली, धनियाँ आदि। गृह वाटिका में शाक-सब्जियों को तीन बार बोया जा सकता है, जो क्रमवार निम्नलिखित हैः-

मौसमी फल व सब्जियां

वर्षा कालीन सब्जियां

इन्हें जून-जूलाई में बोया जा सकता है। इस समय भिंडी, लौकी, करेला, टिंडा, तोरई, बैंगन, टमाटर, ग्वार, लोबिया, मिर्ची, अरबी आदि सब्जियों की खेती की जा सकती है।

शरद कालीन सब्जियां

इन्हें सितंबर-अक्टूबर में उगाया जाता है। जैसे-फूलगोभी, गाजर, मूली, आलू, मटर, पालक, मेथी, धनियाँ, सौंफ, शलगम, पत्तागोभी, गांठगोभी, ब्रोकली, सलाद पत्ता, प्याज, लहसुन,

बाकला, बथुआ,सरसों साग आदि।

ग्रीष्मकालीन सब्जियां

इन्हें फरवरी-मार्च में उगाया जाता है। इस समय भिंडी, ककड़ी, खीरा, लौकी, तोरई, टिंडा, अरबी, तरबूज, खरबूजा, बैंगन आदि सब्जियों की खेती की जा सकती है। उपरोक्त सब्जियों के अलावा गृहवाटिका में कुछ बहुवर्षीय पौधे या फलवृक्ष भी लगाने चाहिए, जैसे अमरूद, नीबू, अनार, केला, करोंदा, पपीता, अंगूर, करीपत्ता, सतावर आदि ।

गृह वाटिका लगाने के लिए भूमि की तैयारी

जिस स्थान पर गृह वाटिका लगानी हो वहाँ की मिट्टी में जल एवं वायु का प्रवाह अच्छा होना चाहिए। इसलिए गृह वाटिका लगाने से पहले भूमि को तैयार कर लेना महत्वपूर्ण है। मिट्टी जितनी भुरभुरी, कार्बनिक खाद एवं जीवांश तत्वों से भरपूर होगी, पैदावार भी उतनी ही अच्छी मिलेगी। यदि बड़े क्षेत्रफल में सब्जियों को लगाना हो, तो इसके लिए एक जुताई डिस्क हैरो तथा 2-3 जुताई मिट्टी पलटने वाले हल या कल्टीवेटर से करनी चाहिए। इसके बाद अच्छी तरह से सड़ी हुई गोबर की खाद 1-1.5 टन प्रति हैक्टेयर के हिसाब से मिट्टी में अच्छी तरह मिलानी चाहिए। घर में थोड़े स्थान में सब्जियाँ उगाने के लिए फावड़ा या कस्सी का उपयोग कर मिट्टी को अच्छी तरह से भुरभुरा कर क्यारियाँ बना लेनी चाहिए तथा गोबर की खाद को क्यारियों में डाल कर मिश्रित कर लेना चाहिए। गमले तैयार करते समय भी कस्सी या खुरपी से मिट्टी अच्छी तरह भुरभुरी कर तथा गोबर की खाद मिलाकर गमले तैयार कर लेने चाहिए।

खाद एवं उर्वरक

खाद एवं उर्वरक का अच्छी पैदावर प्राप्त करने में अत्यधिक महत्व है। इसके लिए आवश्यक है कि मिट्टी में कार्बनिक खाद का प्रयोग हो। खाद मिट्टी की दशा सुधारती है व पौधों के आवश्यक पोषक तत्वों की पूर्ति भी करती है। इसके लिए गृह-वाटिका के एक कोने में कम्पोस्ट खाद का निर्माण भी अवश्य करना चाहिए।

बुवाई की विधि

उन्नत किस्म के बीजों का प्रयोग करें। उचित समय एवं सही तरीके से बुवाई के लिए सब्जी की किस्म के आधार पर निम्नलिखित दो पद्धतियों में से एक चुनें। गृह वाटिका में सब्जियाँ उगाने के लिए सब्जी की किस्म के आधार पर दो प्रकार से बुवाई की जा सकती है।

बीज द्वारा बुवाई

मूली, शलजम, मेथी, पालक, खीरा, करेला, लौकी, कद्दू, टिंडा, सेम, भिंडी आदि सब्जियों के बीज मिट्टी में सीधे ही बोये जाते हैं। बुवाई से पहले बीजों का थाइरम या केपटान 2 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से बीजोपचार कर लेना अच्छा रहता है। अच्छी व जानी-मानी कृषि कंपनियों के बीज लेने पर सामान्यता बीज पहले से ही उपचारित होते है। अतः उनका पुनः बीजोपचार करने की आवश्यकता नहीं होती है। बुवाई करने से पहले बताई गयी विधि द्वारा भूमि जुताई कर तैयार कर लेना चाहिए। खाद तथा उर्वरक की पहली खुराक सब्जी की किस्म के अनुसार निर्दिष्ट मात्रा में अंतिम जुताई के समय मिट्टी में छिड़क कर देनी चाहिए तथा इसके तुंरत बाद सिंचाई करनी चाहिए, जिससे उर्वरक अच्छी तरह प्रभावी हो जाए। इसके बाद ही बुवाई करनी चाहिए।

रोपाई करना

कुछ सब्जियों जैसे टमाटर, फूलगोभी, मिर्च, बैंगन, प्याज,आदि फसले सीधे बीज द्वारा बुवाई न करके बीज उगने के बाद उस पौधे की रोपाई करने से अधिक बढ़ती है। इसलिए ऐसी फसल के लिए बीज, उचित रूप से तैयार किये जाते हैं तत्पश्चात् उनको रोपा जाता हैं। पुदीना,धनिया, हरी मिर्च,अजवाइन, सौंफ जीरा, तुलसी एवं मीठा नीम (कड़ी पत्ता) जैसे पौधे आप अपने घर में उगा सकते हैं। रोपाई करने के 1-2 दिन पहले सिंचाई देनी चाहिए। इससे मिट्टी नम हो जाती है और पौधों की जड़े आसानी से बिना अधिक नुकसान के मिट्टी से बाहर निकल आती है। पौधों की रोपाई करने से पहले खेत/क्यारियाँ/थाले तैयार कर लेने चाहिए। इसके लिए पहले बताई गयी विधि के अनुसार जुताई करके तथा उर्वरक डाल कर मिट्टी को तैयार कर लेना चाहिए। उर्वरक की पहली खुराक सब्जी की किस्म के अनुसार निर्दिष्ट मात्रा में रोपाई के पहले मिट्टी में छिड़ककर दे देनी चाहिए तथा इसके तुरंत बाद सिंचाई करनी चाहिए जिससे उर्वरक अच्छी तरह प्रभावी हो जायें। इसके 1-2 दिन बाद पौधों की रोपाई करनी चाहिए।

रोपाई करने के लिए 15-20 से.मी. ऊँची व 1.25 मीटर चौड़ी तथा आवश्यकतानुसार लम्बी क्यारियाँ बना ली जाती है। दो क्यारियों के बीच 30 से.मी. चौड़ी नाली छोड़ दिया जाता है, जिससे कि निराई-गुड़ाई व पानी की निकासी में आसानी रहती है। पौधों को शाम के समय रोपना चाहिए

तथा रोपने के बाद हल्की सिंचाई देनी चाहिए।

निराई-गुड़ाई व खरपतवार नियंत्रण

सब्जियों के पहले 40-50 दिनों तक खरपतवार मुक्त रखना आवश्यक है। अतः समय-समय पर खुरपी द्वारा निराई गुड़ाई करते रहें। उर्वरक की दो अन्य खुराकें 1 महीने बाद तथा अगली खुराक सामान्यता अगले 45 दिन बाद फूल आने के समय दी जाती है। इसके अतिरिक्त ऋतु एवं आवश्यकतानुसार समय-समय पर सिंचाई करते रहना चाहिए।

रोग व उनका नियंत्रण

किचन गार्डन में लगने वाले रोगों की रोकथाम के लिए शुरुआत में ही सबसे आवश्यक पहलुओं पर धयान देना चाहिए। जैसे कि- बुवाई के पहले मिट्टी को किसी भी कवकनाशी से उपचारित करना एवं बीजों को उपचारित करना

गृहवाटिका बनाते समय ध्यान रखे

- गृहवाटिका के लिए खुली धूप व हवादार छायारहित स्थान या घर की दक्षिण दिशा सर्वोत्तम होती है।
- सिंचाई का प्रबंध अच्छा व जल स्रोत पास में होना चाहिए।
- अच्छे जल निकास वाली दोमट मिट्टी इसके लिए उपयुक्त होती है। सड़ी हुई गोबर की खाद की सहायता से खराब भूमि को भी सुधार कर गृहवाटिका के योग्य बनाया जा सकता है।
- गृहवाटिका का आकार व माप, स्थान की उपलब्धता, फल व सब्जियों की आवश्यकता और समय की उपलब्धता आदि पर निर्भर करता है। चौकोर आकार की गृहवाटिका सर्वोत्तम मानी जाती है।
- अगर वाटिका खुली जगह में बना रहे हैं, तो उसके चारो ओर लकड़ी, बांस आदि की बाड़ बनानी चाहिए। जमीन की 10-15 सेंटीमीटर गहराई तक खुदाई की जानी चाहिए व कंकड़ पत्थर निकाल कर मिट्टी को भुरभुरा बना कर आवश्यकतानुसार क्यारियाँ बना लेनी चाहिए।
- क्यारियों में सड़ी हुयी गोबर की खाद व जैविक खाद आदि का प्रयोग करना चाहिए।
- सीधे बुआई की जाने वाली व नर्सरी द्वारा लगाई जाने वाली सब्जियों को लगाने से पूर्व जैव फफूंद नाशी व जैव कल्चर से उपचारित करने के बाद उचित दूरी पर बनी कतारों में बोना चाहिए।
- क्यारियों में समय-समय पर सिंचाई व निराई गुड़ाई करते रहना चाहिए। गृहवाटिका में कीटों के नियंत्रण व बीमारियों से बचाव के लिए रासायनिक दवाओ का कम से कम प्रयोग करना चाहिए. नीमयुक्त व जैविक दवाओ का ही प्रयोग करना चाहिए।
- उपलब्ध जगह का अधिक से अधिक प्रयोग करने के लिए बेल वाली सब्जियों जैसे लौकी, तोरई, करेला, खीरा आदि को दीवार के सहारे उगा कर छत या बाड़ के ऊपर ले जा सकते हैं।
- जड़ वाली सब्जियों जैसे मूली, शलगम, गाजर व चुकुंदर को गृहवाटिका की क्यारियों की मेड़ो के ऊपर बुआई कर के पैदा किया जा सकता है।

गृहवाटिका के लाभ

(क) ताजी हर्ब मिलना : तुलसी के पत्ते हों या मीठे नीम की पत्तिया, घर में किचन गार्डन होने पर आपको ये आसानी से मिल जाते हैं और आपको इन छोटी-छोटी हर्ब के लिए बाहर नहीं जाना पड़ता है।

(ख) कीटनाशक रहित शाक-सब्जियाँ : किचन गार्डन होने पर आपको पता रहता है कि आप क्या खा रहे हैं. आजकल बाजार में कीटनाशक मिली हुई शाक-सब्जियाँ मिलती है, लेकिन घर पर उगी हुई सब्जी में किसी तरह का रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग नहीं होता है।

(ग) सस्ता : किचन गार्डन में उगी सब्जियों को बनाने से आपका बजट ठीक रहता है। ये सब्जियां अच्छी और सस्ती होती हैं और आप मन मुताबिक समय पर उन्हे तोड़कर बना सकते हैं।

(घ) स्वास्थ्य वर्धाक होना : घर पर तुलसी, धनिया और पुदिना जैसी चीजें उगाएं। इन्हे खाएं, जिससे मनुष्य कई रोगों में आराम मिलेगा। बुखार, अस्थरमा, फेंफड़ों के रोगों आदि में ये फायदा करती हैं।

(ङ) कीड़े-मकोड़े कम होना : घर में किचन गार्डन होने से कीट आदि कम पैदा होते हैं क्योंकि खाली जगह का सदुपयोग हो जाता है साथ ही कुछ विशेष प्रकार के पौधो, कीटों को भागने में सक्षम होते हैं, जैसे- गेंदे के पौधो को हर 3 हर्ब के बाद लगाने से हर्ब अच्छी बनी रहती हैं।

निष्कर्ष

परिवार की आवश्यकतानुसार ताजी एवं स्वादिष्ट शाक-सब्जियाँ साल भर उपलब्ध होती रहती हैं। घरेलू कार्यों में प्रयुक्त हो चुके जल का पौधों की सिंचाई में सदुपयोग हो सकता है एवं घर के कूड़े-करकट का कम्पोस्ट खाद बना कर प्रयोग किया जा सकता है। जैविक उत्पाद (रसायन रहित) होने के कारण फल व सब्जियों में काफी मात्रा में पोषक तत्त्व मौजूद रहते हैं और यह मनोरंजन और व्यायाम का भी एक अच्छा साधन है। ❖❖

अश्वगंधा की खेती कर मुनाफा कमाएँ

प्रखर खरे

उद्यान विभाग, शुआट्स इलाहाबाद

Corresponding Author - prakhar.dynamo@gmail.com

परिचय

अश्वगंधा एक औषधीय पौधा है जिसकी जड़ों में पौधे का मूल तत्व पाया जाता है। इसकी खेती उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्र मध्य प्रदेश, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश, पंजाब एवं हरियाणा में मूलतः की जाती है। यह एक सूखा सहनीय फसल है, हालांकि बेहतर सिंचाई इसकी जड़ों की गुणवत्ता बढ़ाती है।

अश्वगंधा को आमतौर पर बलवर्धक और तनाव कम करने की दवा के रूप में जाना जाता है। यह सर्दी जुकाम जैसी बीमारियों से लड़ने के लिए भी कारगर है। कोरोना महामारी के बाद अश्वगंधा जैसी औषधिक फसलों की माँग में खासा इजाफा देखा गया है।

कैसे करें खेती

अश्वगंधा की खेती वैसे तो बहुत प्राचीन काल से की जा रही है लेकिन इसकी खेती में आये नवीनीकरणों को अपनाना बेहद आवश्यक है। भूमि तैयार करने की विधि, उर्वरक एवं ज्ञानपूर्ण उपयोग से कई गुना अधिक उपज पैदा की जा सकती है। इसकी खेती के लिये 20^0 सेल्सियस से 35^0 सेल्सियस तापमान उपयुक्त होती है और इसे 60-75 से.मीं वर्षा की जरूरत होती है। अश्वगंधा की खेती के लिये मिट्टी की गुणवत्ता सबसे अहम है। मिट्टी में कोई भी निहित कीटनाशक नहीं होना चाहिये एवं आस पास के खेतों से भी कीटनाशक के द्वारा प्रदूषण का खतरा नहीं होना चाहिए। इस संदर्भ में मिट्टी की जाँच करवाना एक आवश्यक कदम है।

भूमि की तैयारी

भूमि की कम से कम दो बार जुताई आवश्यक है । आखिरी जुताई के दौरान जैविक खाद के उपयोग से जड़ों की गुणवत्ता में वृद्धि होती है। अंत में खेत को समतल कर उठे हुए बेड बनाये जाते हैं।

बुआई की प्रक्रिया

अश्वगंधा खरीफ में देर से आने वाली फसल है। उत्तर भारत में इसकी बुआई का समय अगस्त महीने के दूसरे एवं तीसरे सप्ताह तक होता है। खैर, इसकी बुआई में तापमान 20^0 सेल्सियस से 35^0 सेल्सियस होना चाहिए और तापमान के अनुसार इसकी बुआई के समय में भारत के अलग अलग भागों परिवर्तन हो सकता है। आमतौर पर प्री मानसून गतिविधियों के पश्चात् तापमान फसल के लिए अनुकूल हो जाता है।

अश्वगंधा के बीजो की लाइन पद्धति से बुआई करने से बेहतर उपज प्राप्त होती है। अंकुरण के लिये, बुआई के बाद हल्की सिंचाई आवश्यक है। एक हेक्टेयर में 10-12 किलो बीज पर्याप्त होते हैं एवं इनको 15 से.मी. 10 से.मी. के अंतर में 1-3 से.मी. की गहराई पर लगाया जाता है।

उर्वरक एंव खाद

अश्वगंधा में जैविक खाद का उपयोग इसके बाजारी मूल्य को बढ़ाता है। अगर मिट्टी में नाइट्रोजन व फॉस्फोरस कम हो तो भूमि तैयार करते समय 15 किलो नाइट्रोजन एवं 25 किलो फॉस्फोरस प्रति हेक्टयर खाद के साथ मिलाकर उपयोग जा सकता है।

सिंचाई की प्रक्रिया

अश्वगंधा को एक बारानी फसल के तौर पर उगाया जाता है। पूर्ण वितरित मानसून में इसे सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है। सिंचित परिस्थितियों में हर 10 दिन में फसल की सिंचाई की जाती है। रबी की फसलों के भूँसे को मल्च के तौर पर पंक्तियों में फैलाया जाना चाहिये। इससे मिट्टी की नमी संरक्षित होती है एवं खरपतवारों से बचाव मिलता है।

रोगों और कीटों से बचाव

अश्वगंधा की खेती में जितना अधिक हो सकें रासायनिक तत्वों को दूर रखना चाहिए। यह रासायनिक तत्व अश्वगंधा के मूल तत्व की गुणवत्ता कम करते हैं और फसल के बाजारी मूल्य को घटाते हैं। उचित सांस्कृतिक विधियों का उपयोग जैसे गेंदे जैसी जाल फसलों को खेतों के चारों तरफ लगाना, फसल रोटेशन करना एवं समयबद्ध सिंचाई से कीटों से बचाव किया

जा सकता है। कीटो के विरुद्ध जैविक कीटनाशकों का उपयोग भी किया जा सकता है। रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग तभी किया जाना चाहिए जब कोई अन्य विकल्प न हो। अश्वगंधा में बीमारियाँ कम होती हैं। कुछ जगहों पर रॉट एवं ब्लाइट बीमारियाँ देखी जाती हैं । इनका निवारण जैविक तरीके से आसानी के साथ किया जा सकता है।

कटाई एवं बिकाई की प्रक्रिया

अश्वगंधा का पौधा दिसंबर से फूल और फल देने लगता है। फसल की परिपक्वता का आकलन पत्तियों के सूखने और फल के पीले या लाल रंग होने से मापा जाता है। अश्वगंधा के पौधे को जमीन से उखाड कर जड़ों को काट लिया जाता है। जड़ों से मिट्टी को हटा उन्हें धूप में सुखा अतिरिक्त पानी सुखा लिया जाता है।

भारत सरकार देश भर में दस औषधि मंडियाँ संचालित करती है जो कि अमृतसर,जयपुर, कोलकाता, लखनऊ, मुम्बई और नीमच में स्थित हैं। इसके अतिरिक्त किसान www.echarak.in पर भी फसल के खरीदार और फसल के सही मूल्यों को देख सकते हैं।

निष्कर्ष

अश्वगंधा की खेती छोटे एवं बड़े किसान दोनों के लिए फलदायक हो सकती हे। इसके लिये समयबद्ध बुआई और रासायनिक उर्वरकों से बचाव कराना बहुत जरूरी है। सरकार देश में तेजी से औषधीय मंडियों की संख्या बढ़ा रही है। इससे अश्वगंधा की खेती को प्रोत्साहन मिलेगा।

❖❖

कृषि उद्यान दर्पण

3/2, ड्रमण्ड रोड, (नथानी अस्पताल के सामने), प्रयागराज-211001, दूरभाष-9452254524
वेबसाइट : saahasindia.org, ई-मेल-contact.saahas@gmail.com
Artical Submission :– krishiudyandarpan.hi@gmail.com

सम्पादकीय मण्डल

प्रधान संपादक

डॉ. विवेक कुमार त्रिपाठी
प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष
उद्यान विज्ञान विभाग एवं फल विज्ञान विभाग
चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय
कानपुर (उत्तर प्रदेश)

वरिष्ठ संपादक

डॉ. रोशन लाल राऊत
वरिष्ठ वैज्ञानिक एवं विभागाध्यक्ष
कृषि विज्ञान केन्द्र बालाघाट

डॉ. शुभम कुमार कुलश्रेष्ठ
सहायक अध्यापक
उद्यान विज्ञान विभाग
रविन्द्रनाथ टैगोर विश्वविद्यालय, रायसेन (मध्यप्रदेश)

सह सम्पादक

डॉ. नीलम राव रंगारे
वैज्ञानिक
संस्था निदेशालय
इन्दिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय, लाभण्डी, रायपुर (छत्तीसगढ़)

डॉ. नंगखाम जेम्स सिंह
पशुचिकित्सक क्षेत्र सहायक
पशुपालन एवं डेयरी विभाग शुआट्स

डॉ. अर्घ्य मानी
सहायक अध्यापक
लवली प्रोफेशनल विश्वविद्यालय, (एलपीयू), फगवारा, (पंजाब)

डॉ. नियति जैन

प्रखर खरे
एम.एस.सी. उद्यान विज्ञान विभाग
शुआट्स प्रयागराज

पांडुलिपि संपादक — **स्निग्धा हल्दर**

कंटैट लेखक/स्तंभ लेखक — **डॉ. विशाल नाथ पाण्डेय**
विशेष कार्य अधिकारी
आई.सी.ए.आर., आई.ए.आर.आई, झारखण्ड, हजारीबाग, (झारखण्ड)

फोटोग्राफी — **स्वप्निल सुभाष स्वामी**

वेब एडिटर — **प्रितेश हलदार**
प्रकाशक
एग्रो इण्डिया पब्लिकेशन
प्रयागराज

प्रकाशक — **Society for Advancement in Agriculture, Horticulture & Allied Sectors (SAAHAS)**

For the welfare of the Farmers, the society "Society for Advancement in Agriculture, Horticulture and Allied Sectors" willing to publish E-magazine in the name of "KrishiUdyanDarpan E-Magazine (Hindi) **/ KrishiUdyanDarpan** E-Magazine (English**, Innovative Sustainable Farming), which covers across India.**

AUTHORS GUIDELINE

All authors submitting articles must be annual or Life member of SAAHAS, KrishiUdyanDarpan E-Magazine (Hindi) / KrishiUdyanDarpan E-Magazine (English, Innovative Sustainable Farming). Articles must satisfy the minimum quality requirement and plagiarism policy. Authors can submit the original articles in Microsoft Word Format through provided http://saahasindia.org portal only along with scanned copy of duly signed Copyright Form. Authors can get **Copyright Form** from website of SAAHAS. Without duly signed Copyright Form, submitted manuscript will not be processed.

- The manuscript submitted by the author(s) has the full responsibility of facts and reliable in the content, the published article in **Krishi Udyan Darpan** E-Magazine (Hindi) / **Krishi Udyan Darpan** E-Magazine (English, **Innovative Sustainable Farming**) Editor/ Editorial board is not reliable with the manuscript.
- Must be avoiding recommendation of Banned Chemicals by Govt. Of India
- The manuscript submitted by the author(s) should be in Microsoft Word along with the PDF file and the pictures (Colored/Black) should be in high quality resolution in JPEG format, manuscript contains pictures are should be original to the author(s).
- Articles must be prepared in an editable Microsoft word format and should be submitted in the online manuscript submission system.
- Write manuscript in Times New Roman with font size 12 point in single spacing.
- The title should be short and catchy. Must be cantered at top of page in Bold with Capitalize Each Word case.
- Authors Names, designations and affiliations should be on left below the title. Designations and affiliations should be given below the Authors' Names. Indicate corresponding author by giving asterisk (*) along with Email ID
- Not more than five authors of one article.
- It should summarize the content of the article written in simple sentences. (Word limit 100 -150) and the full article should contains (1600 words maximum or 3 page of A4 Size).
- The text should be clear, giving complete details of the article in simple Hindi/English. It should contain a short introduction and a complete methodology and results. Authors must draw conclusions of their articles at last. The abbreviation should be written in full for the first time. Scientific names and technical nomenclature must be accurate. Tables, figures, and photographs should be relevant and appropriately placed with captions among the texts.
- Introduction must present main idea of article. It should be well explained but must be limited to the topic.
- Avoid the **Repetitions** of word's, sentences and Headings.
- The main body of an article may include multiple paragraphs relevant to topic. Add brief subheads at appropriate places. It should be informative and completely self-explanatory.
- Submitted manuscript are only running article and contains the field of Agriculture, Horticulture and Allied sectors.
- All disputes subject to Prayagraj Jurisdiction only.

ABOUT THE SOCIETY

Father of Nation Mahatma Gandhi's concept of rural development meant self-reliance, and least dependence on outsiders. India is an agrarian country and about 65% of our population lives in rural areas. But unfortunately, most of us do not have any idea about the extent of poverty and the real conditions of rural India.

With the purpose of serving the agricultural fraternity and farming community the Society for Advancement in Agriculture, Horticulture and Allied Sectors (SAAHAS) was founded in 2020 (under Society Registration Act, 1860). Among multifarious ways of serving farming community we are involved in training of the farmers by organising technology dissemination programmes in villages, guiding them to adopt good agricultural practices involving planned crop management. It helps in reducing farm base losses and motivating them to become farmer level entrepreneur rather than a simple producer. It involves initiating skill based knowledge to the student of agriculture, horticulture and allied sectors to encourage them to serve the farmers in the best possible ways.

SAAHAS calls us to look into the genuine problems of farmers and address those issues for their betterment in the arena of Agriculture, horticulture and allied sectors. Besides agriculture, horticultural crop production has been given a major focus by Govt. of India in future crop diversification, improving livelihood through doubling farmers' income, economic opportunities through export and job opportunities. While good beginning is made, much is to be achieved in different areas in agro-horticulture sector.

Apart from that, SAAHAS helps developing the culture to involve more number of women in farming, processing of crops and value addition thereof for higher returns in terms of total income. SAAHAS eagerly involves with the farmers and agriculture entrepreneur to motivate them for introducing hi-tech farming, which includes growing of high value horticultural crops in hydroponics, aeroponics, polyhouse, net house and greenhouse. The society has geared up its activities to take up the challenges of biotic and abiotic stresses, emerging needs of quality seeds and planting material and reducing cost of production.

There are several government and non-government organisations intended of farmer's welfare; still there is dire need for more involvement and attachment with the farmers. Our society's noble initiative can ensure diminishing of the persistent gap between agro-technocrats, scientists with the needy farmers. We not only ensure that the farmers choose right variety of right crop, better nutrient management through diagnosis recommended system and pest diagnosis but we also help them to sale their produce at premium rates. There is a major issue of chemical residues in food, soil and ecology which is also a big concern of the century. The Society also aims to motivate the farmers either for minimal use of chemical inputs or total adoption of organic farming. Consultancy, training, awareness programs, national and international seminars and symposia and technical services are the prime activities of the SAAHAS.

Society for advancement in Agriculture, Horticulture and Allied Sectors publishes peer reviewed scientific journal, 'Journal of Applied Agriculture and Life Sciences (JAALS)', biannually since January 2020 focusing on articles, research papers and short communications of both basic and applied aspect of original research in all branches of Agriculture, horticulture and other allied sciences. To apprise the scientists and all those who are working in the field of Agriculture, horticulture and allied sectors about recent scientific advancement is the aim of the Journal.